मोहन राकेश के एकांकियों में सामाजिक द्वंद्व

('अंडे के छिलके-संग्रह' के विशेष संदर्भ में)

(एम.फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशिका

डा० ज्योतिसर शर्मा

शोध-छात्रा

सुश्री थेसो क्रोपी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067

1999

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature, & Culture Studies
NEW DELHI-110067. INDIA

Chairperson
Centre of Indian Languages

Date:
21·7·1999

DECLARATION

I declare that the material in this dissertation entitled "**MOHAN RAKESH KE EKANKIYON ME SAMAJIK DWANDWA (ANDEY KE CHHILKE-SANGRAH KE VISHESH SANDARBH ME)**" submitted by me is original work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other University/Institution.

21.7.99

THESO KROPI
Name of the Scholar

DR. JYOTISAR SHARMA
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS/JNU 21.7.99.

PROF. NASEER AHMAD KHAN
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM : JAYENU, TEL. : (91-011) 6107676, 6167557 Extn. 2217, Fax : (91-011) 6165886, 6106025

आदरणीय भैया जी

एवं

भाभी जी को

सादर समर्पित

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
भूमिका		एक - तीन
अध्याय एक :	मोहन राकेश : जीवन-रेखा एवं सृजन-सार	1 - 22
	(क) जीवन और परिवेश	
	(ख) रचना-संसार	
अध्याय दो :	हिन्दी एकांकी और 'अण्डे के छिलके' संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन	23 - 60
	(क) हिन्दी एकांकी का स्वरूप और प्रमुख एकांकी	
	(ख) 'अंडे के छिलके' संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन	
अध्याय तीन :	'अण्डे के छिलके' संग्रह में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप	61 - 97
	(क) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व	
	(ख) सामाजिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व	
	(ग) राजनीतिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व	
	(घ) आर्थिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व	
	(ङ) धार्मिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व	

पृष्ठ संख्या

अध्याय चार : `अण्डे के छिलके` संग्रह का शिल्प-विधान 98 - 126

(क) नाट्य-भाषा

(ख) नाटकीय विधान

उपसंहार 127 - 132

ग्रन्थानुक्रमणिका 133 - 138

भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में मोहन राकेश का स्थान महत्वपूर्ण है । नाटक के क्षेत्र में उन्हें विशेष सफलता मिली । उनकी गणना स्वतन्त्र भारत के सफल नाटककारों में की जाती है । वैसे तो उन के लेखन में विषय का वैविध्य दिखाई पड़ताहै, लेकिन मूलत: वे सामाजिक, पारिवारिक द्वन्द्वों के रचनाकार हैं, विशेष रूप से स्त्री-पुरुष के जीवन के द्वन्द्वों के । द्वन्द्व उनके रचना संसार का अनिवार्य पहलू है । जिस रचना में यह द्वन्द्व नहीं है, वह रचना सपाट सी लगती है । लघु शोध प्रबन्ध का विषय भी द्वन्द्व से ही सम्बन्धित है, जिसे चार अध्यायों एवं उप-अध्यायों में बांटा गया है । प्रथम अध्याय `मोहन राकेश : जीवन-रेखा एवं सृजन-संसार` है, जिसे `जीवन और परिवेश` एवं `रचना-संसार` नामक दो उप-अध्यायों में बांटा गया है ।`जीवन और परिवेश` नामक उप-अध्याय में उनके द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व एवं परिवेश का विवेचन है और `रचना-संसार` नामक उप-अध्याय में उनके सृजन-संसार पर प्रकाश डाला गया है ।

अध्याय दो -`हिन्दी एकांकी और `अण्डे के छिलके` संग्रह का परिचायक अध्ययन` है । `हिन्दी एकांकी का स्वरूप और प्रमुख एकांकी` तथा `अण्डे के छिलके ` संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन` इसके दो उप-अध्याय हैं । प्रथम उप-अध्याय में विभिन्न विद्वानों के मतों को उद्धृत करते हुए एकांकी का स्वरूप स्पष्ट किया गया है, साथ ही कुछ प्रमुख एकांकी-कारों के एकांकियों का परिचय दिया गया है । दूसरे उप-अध्याय में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` पुस्तक में संकलित रचनाओं का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

मोहन राकेश के साहित्य में द्वन्द्व का स्वरूप काफी विस्तृत है। वे द्वन्द्व को केवल स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में ही नहीं देखते, बल्किसमाज के प्रत्येक पहलू में देखते हैं। जहां तक `अण्डे के छिलके` संग्रह का प्रश्न है, उसमें भी समाज के विविध पहलुओं के द्वन्द्व विद्यमान हैं। इसी को दृष्टि में रखते हुए अध्याय तीन -`अण्डे के छिलके` संग्रह में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप` - को पांच उप-अध्यायों - `पारिवारिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व`, `सामाजिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व`,`राजनीतिक जीवनसम्बन्धी द्वन्द्व`, `आर्थिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व`, `धार्मिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व` में बांट कर सामाजिक द्वन्द्व के विविध पहलुओं का विवेचन किया गया है।

अंतिम अध्याय `अण्डे के छिलके` संग्रह का शिल्प विधान` है। `नाट्य भाषा` और `नाटकीय विधान` इसके दो उप-अध्याय हैं। नाट्य भाषा के अन्तर्गत मोहन राकेश की भाषा यात्रा का विवेचन करते हुए, `अण्डे के छिलके` संग्रह की रचनाओं कीभाषा पर विचार किया गया है। नाटकीय विधान उप-अध्याय के अन्तर्गत `अण्डे के छिलके` संग्रह की रचनाओं को नाट्य तत्वों के आधार पर परखने की कोशिश की गई है।

अन्त में उपसंहार है जिसमें इस लघु शोध-प्रबन्ध का सार रूप है।

अपने सीमित ज्ञान के कारण, आरम्भ में तो इस शोध प्रबन्ध को पूरा करना दुस्साध्य प्रतीत हो रहा था, लेकिन डा० ज्योतिसर शर्मा के वात्सल्यपूर्ण निर्देशन मेंयह दुस्साध्य कार्य भी साध्य हो सका। आरम्भ से अंत तक वे मेरे लिए बहुत कुछ करती रहीं। अहिंदी भाषी क्षेत्र की होने के कारण मेरे लेखन में जो भाषिक त्रुटियां थीं, उसे सुधारने में तो उन्होंने मेरी मदद की ही, साथ ही शोध- प्रबन्ध से संबंधित सामग्री एकत्र करने में भी मेरी बहुत सहायता की। यहां तक कि पुस्तकालयों में मेरे साथ-साथ गईं। इस प्रकार शुरू से अंत तक मुझे उनका स्नेहपूर्ण सहयोग मिलता रहा। यदि उनका स्नेह सहयोग न मिला होता तो शायद यह शोध कार्य सम्पन्न ही न हो पाता। उन्हें धन्यवाद देकर या उनके प्रति आभार व्यक्त करके मैं उनके स्नेह को परिमित नहीं करना चाहती हूं।

प्रो० मैनेजर पाण्डेय, प्रो० केदारनाथ सिंह, डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल डा० गोविन्द प्रसाद जैसे विद्वान गुरुजनों की मैं बहुत आभारी हूं, जिनके सानिध्य में मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

श्री दिलीप कुमार जी एवं श्री चन्द्रशेखर रावल जी से समय-समय पर सहयोग एवं सुझाव मिलते रहे हैं। अत: उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूं। अध्यायों की रूपरेखा की निर्मिति में श्री दिलीप जी का सक्रिय सहयोग मिला। अत:उनके प्रति मैं विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूं।

मेरे सहपाठी मित्रों में मैनका, रमेश, कमला कांत, ज्ञानेन्द्र, अंजय से भी मुझे पर्याप्त सहयोग और सुझाव मिले। मेरे ये मित्र हमेशा मेरे शोध कार्य के बारे में पूछते रहते थे। अत: इन सब को धन्यवाद देना मैं आवश्यक समझती हूं।

मेरे ताप्ती छात्रावास की मित्रों में सरिता का सक्रिय सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनुराधा और दीप्ति का आत्मीय सहयोग मेरा उत्साह बढ़ाता रहा। सोनाली, गीता, बाबी, तूलिका, वर्षा, मंजिष्ठा - 'पूर्णिमा दीदी', शेषा, अंजलि, रंजना, कस्तूरी, नविता, मेधा से भी मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता मिलती रही।

अजित, आशा, फणीगू, जिनके साथ मेरा बचपन बीता है, से पत्रों के माध्यम से हमेशा भावनात्मक सहयोग मिलता रहा है।

बहन सापी और फुदांग की प्रेरणा ही मेरा संबल है। अत: उनका जिक्र किए बिना यह भूमिका अधूरी ही रहजाएगी।

थेसो क्रोपी

अध्याय एक

मोहन राकेश : जीवन-रेखा एवं सृजन-सार

(क) जीवन और परिवेश

(ख) रचना-संसार

(क) जीवन और परिवेश

आधुनिक हिन्दी साहित्य में, विशेषकर नाट्य सृजन के क्षेत्र में, जिस समय मोहन राकेश का आगमन होता है, उस समय प्रसाद की नाट्य परम्परा समाप्त हो रही थी । नाटक अतीत के काल्पनिक आदर्शों तथा संस्कृत नाट्य-परम्परा की रूढ़ियों से मुक्त होकर वर्तमान जीवन की वास्तविकता का स्पर्श कर रहा था । वर्तमान जीवन की वास्तविकताओं को कहीं समस्या के रूप में चित्रित किया जा रहा था तो कहीं यथार्थ के रूप में, उधर रंगमंच के क्षेत्र में भी जागरण हो रहा था । अपने सीमित साधनों, सीमित उपकरणों में भी वह समकालीन जीवन को साकार करने का प्रयास कर रहा था। कुछ कमियों के बावजूद भी यह एक वांछनीय प्रयास था क्योंकि दर्शक पहली बार अपने भोगे हुए यथार्थ से साक्षात्कार कर रहा था । इन परिस्थितियों में हिन्दी नाटक एवं रंगमंच को जिन नाटककारों ने प्रौढ़ता प्रदान की, उनमें मोहन राकेश का नाम अग्रगण्य है ।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 को अमृतसर में हुआ । इनका मूल नाम मदनमोहन गुगलानी था । इनके पिता करमचंद गुगलानी पेशे से वकील थे ।

घर के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का मोहन पर गहरा प्रभाव पड़ा । उनका बचपन अमृतसर एवं लाहौर की गलियों में बीता था । उन्होंने लिखा है कि बचपन में उन्हें गली के अन्य बच्चों के साथ खेलने नहीं दिया जाता था । गली के बच्चों के साथ खेलने के लिए जब वे चोरी से घर से भाग जाते थे तो उन्हें पकड़ कर अकेले कमरे में बन्द कर दिया जाता था ।

बचपन में ही पिता जी की मृत्यु हो जाने से घर की सारी

जिम्मेदारी उनके ऊपर आ गई थी । इन सब बातों का मोहन राकेश के आनेवाले जीवन पर गहरा असर पड़ा और वे भीड़ में अकेले रहने वाले व्यक्ति साबित हुए ।

मोहन राकेश स्वच्छंद प्रकृति के थे । ठहरी हुई जिंदगी उन्हें पसंद न थी । इसीलिए कुछ लोग उनपर आरोप लाते हैं कि वह एक जगह टिकता नहीं, आज यहां है तो कल वहां । आज बम्बई में है तो कल अफ्रीका में भी हो सकता है । वह किसी एक का होकर नहीं रह सकता, बहुत ही गैर जिम्मेदार और अनुशासनहीन आदमी है । सही काम करते हुए भी तुनककर गलत काम कर बैठता है, आदि आदि । कुछ हद तक ये बातें सही भी हैं । पर हम इन्हें उनके जीवन में आयी बेतरतीब परिस्थितियों से काट कर नहीं देख सकते । उनके जीवन में जो अव्यवस्था, अनुशासनहीनता, असंतुलन दिखाई देता है, उसे हम उनके बाह्य व्यक्तित्व का अंग कह सकते हैं । यदि हम भीतर से उनके व्यक्तित्व को देखें तो वे इसके विपरीत दिखाई देंगे । कमलेश्वर नेअपने संस्मरण `मेरा हमदम मेरा दोस्त` में लिखा है कि -`बड़ी बेतरतीब जिंदगी है मेरे इस दोस्त की, पर सतह के नीचे उतना ही एक जबरदस्त अनुशासन दिखाई पड़ता है । वह असंगठित है और बिखरा हुआ दिखाई देता है, उतनी ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रक्रिया । जितने मसल-मसल कर वह सिगरेट के टुकड़े जगह जगह फेंकता है, उतने ही करीने से वह अपने विचारों और अनुभवों को सजाता है । उसका कफ कोट की आस्तीन से चाहे छः अंगुल बाहर निकला रहे, पर कहानी में कलात्मक असंतुलन की कहीं कोर नजर नहीं आ सकती है ।`[1]

----

1. कमलेश्वर - मेरा हमदम मेरा दोस्त, पृ0 12-13

मोहन राकेश अपनी स्वच्छंद प्रकृति के कारण ही किसी एक जगह बन्ध कर नहीं रह सके । आजीवन एक जगह से दूसरी जगह भागते रहे । उनके जीवन की तरह ही उनकी नौकरी भी कभी स्थिर नहीं रही । अच्छी-खासी नौकरी भी वे छोड़ देते थे। फिर दूसरी नौकरी कर लेते, लेकिन वहां भी ज्यादा दिन न टिकते । इस तरह वे कभी बम्बई में तो कभी जलंधर में, कभी शिमला में तो कभी दिल्ली में भागते रहे । एक बार उन्होंने सोचा कि स्वतंत्र रूप से लेखन पर निर्भर रहकर काम चलाया जा सकता है । लेकिन अभी यह भी नहीं हो सकता था क्योंकि जीविका की समस्या उनके सामने मुंह बाये खड़ी थी, जिसकी चर्चा उन्होंने `गर्दिश के दिन` में की है --`मुझे नौकरी तो मिल गई, पर मोहभंग की वह प्रक्रिया जो वहां से जाने के समय शुरू हुई थी, वह तब तक वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक, कई-कई स्तरों पर अपने चरम तक पहुंचने लगी थी ।`[1]

जीविका की समस्या से जूझते हुए एक बार उन्होंने अध्यापकी की नौकरी कर ली । लेकिन यह नौकरी भी उनके लिए स्थायी न बन सकी । उनको लगता कि वह जो चाह रहे हैं, वह नहीं हो पा रहा है । उनको पढ़ाने जाना, रोज-रोज क्लास में जाकर लेक्चर देना, बहुत अखरता था । अत: स्वतन्त्र लेखन का ही विचार उनके दिलो-दिमाग पर छाया रहता था । उनकी इस चिंता को कमलेश्वर ने भी उद्धृत किया है -`हम लेखन के बल पर क्यों नहीं जी सकते ? क्यों नहीं जी सकते ? हमारा यह हक है कि हम लिखकर इज्जत से जी सकें ।`[2] लगता है कि मोहन राकेश स्थायी नौकरी के पक्ष में कभी नहीं रहे । अपनी डायरी में वे लिखते हैं कि -

---

1. कमलेश्वर -`गर्दिश के दिन`, पृ० 15
2. कमलेश्वर -`मेरा हमदम मेरा दोस्त`, पृ० 9

'प्रभु ईसा मसीह को कभी नौकरी नहीं करनी पड़ी वरना सारा टेस्टामेंट ही बदल गया होता ।... एक एक करके सात पीरियड पढ़ा सकते थे ईसामसीह । इतने पीरियड ? इससे कहीं आसान था क्रास कन्धे पर लेकर चलना ।'[1]

मोहन राकेश ने जितनी भी नौकरियां कीं, उनमें विभागाध्यक्ष पद की नौकरी उनकी सबसे लम्बी नौकरी थी । इस पद से त्यागपत्र देने के बाद उन्होंने 'सारिका' पत्रिका के सम्पादक का कार्य भार संभाला । परन्तु यहां भी उनका मन ज्यादा दिनों तक न रम सका और यहां से भी त्याग पत्र दे दिया । इसके बाद उन्होंने कभी भी नौकरी नहीं की और आजीवन स्वतन्त्र लेखन करते रहे ।

मोहन राकेश का वैवाहिक जीवन भी बहुत दिलचस्प है । वैवाहिक जीवन की राहों पर चलते हुए उन्होंने बहुत ही कटु अनुभव किए । उन्होंने अपने जीवन में तीन विवाह किए थे । पहला विवाह सुशीला के साथ सन् 1950 में किया और विच्छेद 12 अगस्त 1957 में । दूसरा विवाह पुष्पा के साथ 9 मई 1960 में और विच्छेद संभवत: 1962 में , तीसरा और अन्तिम विवाह अनीता के साथ 23 जुलाई 1963 में हुआ और आखिरी सांस तक उनके साथ मधुर दाम्पत्य जीवन जिया ।

चूंकि मोहन राकेश स्वच्छंद मनोवृत्ति के थे, इसलिए उनके विवाह सम्बन्धी विचार भी स्वच्छंद थे । वे विवाह को केवल सामाजिक समझौते के रूप में स्वीकार नहीं करते थे ।उनके लिए पत्नी रूढ़िग्रस्त धार्मिक कर्मकांड में बंध कर प्राप्त अर्धांगिनी नहीं थी, बल्कि वह प्रेम एवं विश्वास की ऐसी मूर्ति थी जो पुलक एवं आनन्द से जीवन को गरिमामय बना दे ।

---

1. मोहन राकेश, 'डायरी', पृ0

ऐसी ही स्त्री को वे पत्नी के रूप में चाहते थे । शायद पहली पत्नी सुशीला ऐसी न थी, इसीलिए दोनों लोगों का दाम्पत्य जीवन असफल रहा । दूसरी बार भी घर बसाने का प्रयास तलाक के रूप में बदल गया । इस वैवाहिक जीवन ने उन्हें कटु अनुभव दिए । उन्हें `पत्नी` नाम से दहशत और घृणा हो गई । इन दोनों पत्नियों से उन्होंने क्या पाया और कैसा अनुभव किया, इसे वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं -`शादी का दूसरा प्रयोग पीठ पर छुरा घोंसा गया जो मृत्यु प्रेरक कम किन्तु आघात जनक अधिक था । पहली औरत शिक्षित और बुद्धिशाली थी परन्तु उस में वाणी और व्यवहार की ऋजुता की न्यूनता थी । दूसरी औरत न शिक्षित थी, न बुद्धिशाली और पंजाब के छोटे से कस्बे की निम्नमध्यवर्गीय संकीर्णता को लिए हुए थी । एक ने मुझे रेत और पाषाणों की अनुभूति कराई, दूसरे ने मूर्खता और गंदे नाले की ।`[1]

अब मोहन राकेश को घर नाम से डर लगने लगा । जीवन में उन्हें मान-सम्मान, मित्र सभी कुछ मिला था, पर घर नहीं, जिसकी वे तलाश कर रहे थे । दो बार के वैवाहिक जीवन की असफलता ने उन्हें मानसिक तौर पर बहुत परेशान किया । इसे हम उनके उस समय के साहित्य-लेखन में स्पष्ट देख सकते हैं । उनके साहित्य के एक बड़े हिस्से में घर की तलाश अन्तर्व्याप्त है । ये चाहे नाटक हों या कहानियां, उपन्यास हों या एकांकी ।

मोहन राकेश के वैवाहिक जीवन की असफलताओं को देखते हुए कुछ लोग उन पर `होम ब्रेकर` का आरोप लगाते हैं, लेकिन यह गलत है ।

---

1. मोहन राकेश - डायरी, पृ0 231

उनके अन्दर घर बसाने की कैसी चाह थी, उसे हम शादी के प्रथम दिवस ही अनीता राकेश से कहे गए उनके इन शब्दों में देख सकते हैं - 'मुझे घर चाहिए... अन्ना घर । मुझे जिंदगी में और सब कुछ मिला... सिर्फ एक 'घर' ही नहीं मिला ।'[1]

मोहन राकेश अपने बच्चों से बहुत प्यार करते थे । पहली पत्नी सुशीला से उन्हें एक बेटा नवनीत मिला जिसे वे प्यार से नीत या नीते कहा करते थे । तलाक के बाद नवनीत सुशीला के साथचला गया, पर राकेश कई सालों तक उसे भूल न पाए ।उनके इस व्यक्तिगत जीवन का बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ा था, इसे वे अच्छी तरह महसूस कर रहे थे । 'एक और जिंदगी' में उनकी इसी अनुभूति की अभिव्यक्ति है । इस बच्चे के आधार पर मन्नू भंडारी ने भी एक मार्मिक उपन्यास 'आपका बंटी' लिखा। उनकी तीसरी पत्नी अनीता से भी दो बच्चे हुए शैली और पूरवा । उन्हें वे कितना अधिक प्यार करते थे इसकी चर्चा अनीता राकेश ने अपने संस्मरण में अच्छी तरह की है ।

मोहन राकेश महत्वाकांक्षी, स्वाभिमानी, स्वभाव से फक्कड, रोमेंटिक एवं विचित्र व्यक्तित्व वाले कलाकार थे । उनका यह व्यक्तित्व उनके दोस्तों एवं उस समय के लेखकों के बीच अच्छी-खासी चर्चा का विषय रहा है । उनके घनिष्ठ मित्र कमलेश्वर अपने संस्मरण 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' में उनके व्यक्तित्व के बारे में इस प्रकार लिखते हैं -- 'कई अदालतें हैं, जिनमें मेरा यह बहुत प्यारा दोस्त खड़ा हुआ है । कई जुर्म हैं, जिनका यह शख्स गुनहगार है, और जुर्म भी ऐसे-वैसे नहीं, काफी संगीन हैं... पहला जुर्म है कि राकेश कहीं टिकता नहीं और

---

1. अनीता राकेश - 'चंद सतरें और ', पृ0 76

दूसरा है कि टिकता है तो उठता नहीं ।... कि वह चाहता है कि दुनिया में सभी लोग सिर्फ उसके लिए सोचें और परेशान हों ।... कि वह सिर्फ यह चाहता है कि सब की परेशानियां वह ओढ़ ले , उसके बारे में कोई बात न की जाए ।'[1]

मोहन राकेश का व्यक्तित्व ऐसा है कि उसे केवल ऊपर से देख कर नहीं समझा जा सकता । उसे समझने के लिए अनुभव की जरूरत है क्योंकि वे बाहर से कुछ और थे और भीतर से कुछ और । उनके व्यक्तित्व का प्रबल पक्ष था उनका 'ईगो' परन्तु इस 'ईगो' से किसी दूसरे पर आंच न आए, इसका वे ख्याल रखते थे । उन्हें औपचारिकता से ऊब थी और स्वाभाविकता से हमदर्दी । अपने व्यक्तित्व में अहम् की प्रबलता के कारण हीउन्होंने किसी से समझौता नहीं किया । इसी अहम् के कारण उनके व्यक्तित्व के दो पहलू दिखाई देते हैं । उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करती हुई अनीता राकेश लिखती हैं -'बाहर से राकेश जी जितने सीधे और सरल दीखते थे उतने वास्तव में थे नहीं । उन्हें अंदर तक ठीक से समझना एक बहुत बड़ी समस्या थी । बाहर से जितने इन्फार्मल, उतने ही ज्यादा मन से फार्मल, जिन मित्रों के साथ वह अत्यन्त इन्फार्मल रहे, वह उन्हें इससे अधिक नहीं जान सके । और जिनके साथ नजदीक थे, वह भी उनसे उससे अधिक उन्हें नहीं जान सके । क्योंकि राकेश जी केवल अपने लिए ही कहीं पूर्ण थे ।'[2] इसी से उनके व्यक्तित्व को समझने में लोग अक्सर भूल कर बैठते हैं । उनके इस विचित्र व्यक्तित्व की छाप उनकी

---

1. कमलेश्वर - मेरा हमदम मेरा दोस्त, पृ० ।
2. अनीता राकेश - चंद सतरें और, पृ० 87

रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है। चाहे वे उपन्यास हों या कहानियां, नाटक हों या एकांकी ।

मोहन राकेश सच्चाई पसन्द और ईमानदार व्यक्ति थे । उनको झूठ से सख्त नफरत थी । बनावटी जिंदगी तो उन्हें कतई पसन्द न थी । वे ईमानदारी से जीने के कायल थे । इसलिए वे कहा करते थे - 'आदमी को सबसे पहले अपने से ईमानदार होना चाहिए ।'[1]

मोहन राकेश सच्चे व्यक्ति ही नहीं, सच्चे साहित्यकार भी थे । उन्होंने साहित्य-सृजन को ही अपने जीवन का ध्येय माना । उनका प्रसिद्ध कमिटमेंट था जो उन्होंने अनीता से कह रखा था - 'जिंदगी में पहले नम्बर पर मेरे लिए मेरा लेखन है, दूसरे नम्बर पर मेरे दोस्त और तीसरे नम्बर पर तुम - लेकिन तीनों ही मेरे लिए आवश्यक हैं ।'[2] जीवन में इतने उथल-पुथल आने के बावजूद यही एक स्थायी कमिटमेंट था, यही उनके जीवन का सत्य था । इस क्रम को उन्होंने कभी नहीं बदला ।

मोहन राकेश के साथ एक बात यह थी कि वे चाह कर भी अधिक नहीं लिख पाते थे । इसका कारण उनका स्वयम् का 'सेल्फ रिजेक्शन' था कि अपनी एक-एक रचना, नाटक , कहानी, उपन्यास कुछ भी, को बार बार काटते, फाड़ते, छांटते रहते थे । यह क्रम तब तक चलता था, जब तक कि वे इससे संतुष्ट न हो जाएं । एक-एक रचना का छः छः, सात-सात ड्राफ्ट बनाते थे । इसलिए उन्हें एक रचना को तैयार करने में काफी समय लग जाता था । लेकिन इस प्रकार के शोधन-संशोधन के बाद जो रचना

---

1. अनीता राकेश - चंद सतरें और, पृ० 98
2. वही, पृ० 79

तैयार होती थी, वह अन्य लेखकों की रचनाओं से अलग दिखाई देती थी । वे स्वयं ही आलोचक होते थे और स्वयं ही प्रमाणिक कर्ता । इस सम्बन्ध में शरेश चंद चुलकी मठ लिखते हैं -"उनके लेखन प्रक्रिया की यह अजीब आदत थी कि जब भी स्वास्थ्य बिगड़ने या बाहर जाने और किसी कारण से काम अधूरा रह जाता तो ये अधूरी अछूती रचना को जहां का वहां छोड़ देते और फिर पहले पन्ने से ही लिखना शुरू कर देते थे । इन सब कारणों से वे कम लिखने को विवश थे ।"[1]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के पटल पर जिस समय मोहन राकेश का उदय होता है, साहित्य में नई प्रवृत्तियां भी उदित हो रही थीं । साहित्य कल्पना और आदर्श के लोक से उतर कर यथार्थ की जमीन पर बढ़ रहा था । यह प्रवृत्ति साहित्य की हर विधा में सक्रिय थी । नाटक एवं रंगमंच में इस प्रवृत्ति का उभार स्पष्ट दिखाई पड़ता है । मोहन राकेश की बहुमुखी प्रतिभा ने साहित्य की लगभग हर विधा को प्रभावित किया, नाटक एवं रंगमंच को विशेष रूप से । उनके लेखन की गति धीमी जरूर थी, लेकिन उन्होंने लिखा काफी है । उनका साहित्य,लेखन के प्रति उनके शाश्वत समर्पण का प्रमाण है ।

(ख) रचना-संसार

किसी लेखक के रचना संसार को समझने के लिए उसके अनुभव-संसार से होकर गुजरना आवश्यक होता है क्योंकि उसके रचना-संसार में उसका अनुभव-संसार ही फैला होता है । लेखक के अनुभव संसार के निर्माण में उसके जीवन की परिस्थितियां, उसके घर-परिवार का परिवेश साथ ही देश का राजनैतिक,सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश भी सहायक होता है । इन सब स्थितियों - परिस्थितियों से गुजरते हुए वह जो कुछ भी अनुभव करता है, उसे अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है । जहां तक मोहन राकेश के रचना-संसार की बात है, उसमें कहीं उनका व्यक्ति जीवन व्यक्त है, तो कहीं युग का यथार्थ । अपने भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने युग के यथार्थ से भी जोड़ने की कोशिश की है । यह आकस्मिक नहीं है कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर ही उन्होंने ज्यादा लिखा है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में जब भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की बात छिड़ती है, तो मोहन राकेश का अश्क आंखों के सामने आ जाता है । स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का टूटना, कभी टूटने की हद तक पहुंच जाना, तनावपूर्ण वातावरण में साथ जीने की विवशता, उनके प्रिय विषय रहे हैं । इस टूटन को, तनाव को, तनाव पूर्ण वातावरण में जीने की विवशता को उन्होंने स्वयं भोगा था जिसकी अनेकश: अभिव्यक्ति उनके रचना-संसार में मिलती है ।

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर भारत के रचनाकार हैं । देश की आजादी के बाद जो भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तन हुए उन्होंने उसे बहुत ही शिद्दत के साथ महसूस किया और उसे अपने रचना-संसार में अभिव्यक्त किया । स्वतन्त्रता के बाद देश कुछ समय तक साम्प्रदायिकता और शरणार्थियों की समस्या से जूझता रहा । इन सब का आवेग जब थोड़ा कम हुआ तो देश के विकास की आवश्यकता

महसूस हुई । देश में आम चुनाव हुए । सरकार चुनी गई । आजादी के दिनों के नेता मंत्री बने । देश के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं शुरू की गयीं । विदेशी सहायता से बड़े-बड़े उद्योग धन्धे लगाए गए । शहर विकसित हो रहे थे और ग्रामीणजनता इनकी ओर झुकी आ रही थी । इसका असर हमारी संयुक्त परिवार व्यवस्था पर पड़ा । लेकिन इन सब के पीछे भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद का पौधा भी पनप रहा था । आजादी के दिनों के सिद्धान्त ताक पर रख दिए गए । उनका अवसरवादी उपयोग होने लगा । राजनीति भी दिशाहीन हो चली । राजनीतिक दल चुनावों के समय ही दिखाई देते । स्वर्णिम भविष्य का वादा करके पुन: लुप्त हो जाते । कथनी और करनी के इस अन्तर की अभिव्यक्ति साहित्य में व्यंग्य-विडम्बना और मोह-भंग के रूप में हुई ।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत ने नारी शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास किया । शिक्षित-नारियों की संख्या बढ़ी । उन्होंने नौकरियां कीं और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हुईं । इससे पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव आया ।साहित्य में भी स्वावलम्बी नारी पात्रों का उदय हुआ । स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य सम्बन्धों का नए ढंग से चित्रण हुआ । मोहन राकेश का कथा-साहित्य इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

छठे दशक तक आते-आते देश में काफी बदलाव आ चुका था । राजनीति के क्षेत्र में भ्रष्टाचार और दिशाहीनता की गति और तेज हुई । सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन सामाजिक क्षेत्र में लक्ष्य किए गए । पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा था । पुरानी पीढ़ी इसे आशंका की दृष्टि से देख रही थी तो नई पीढ़ी इसके अंधानुकरण की लहर में बही जा रही थी । पुराने आदर्श और मूल्य टूट

रहे थे और नए मूल्य बन रहे थे । नई पीढ़ी न तो पूर्ण-रूपेण पुराने आदर्शों और मूल्यों का त्याग कर पा रही थी और न ही नए मूल्यों को अंगीकृत कर पा रही थी । फलत: उसके अन्दर कुंठा की भावना जागृत हुई । यह मुख्यत: शहरी नई पीढ़ी की स्थिति थी । लेकिन इससे गांव भी अछूते न रहे । गांव की युवा पीढ़ी अपने आत्म सम्मान के प्रति विशेष रूपसे जागृत हुई । इन सब की अभिव्यक्ति साहित्य में देखने को मिलती है ।

गांव के लोग यह समझते थे कि शहरी जीवन ज्यादा अच्छा होता है, लेकिन शीघ्र ही उनका यह भ्रम टूट गया । अत: जो लोग गांव से शहरों की ओर पलायन कर गए थे, उन्हें गांव की याद फिर सताने लगी थी और वे वापस आ गए । 'आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास भी ऐसा ही है जो शहरी जीवन से तंग आकर अपना सब कुछ छोड़ कर गांव वापस लौट आता है ।

साहित्य और समाज में एक नव धनाढ्य वर्ग का उदय हो रहा था । जिसके लिए धन ही सब कुछ था । यह अत्यंत ही संवेदनहीन और दिखावटी वर्ग था । स्त्री जो बहुत पहले ही आत्मनिर्भरता की डगर पर निकल चुकी थी, अब आर्थिक विषमता से पीड़ित होकर नौकरी करने लगी, इसके परिणामस्वरूप उसके अन्दर वैसी ही झुंझलाहट और झल्लाहट दिखाई देने लगी, जैसी पुरुष में दिखाई देती थी । अत: उसके अन्दर एक नए प्रकार की मानसिक यन्त्रणा और तनाव का जन्म हुआ ।

इन्हीं परिस्थितियों से प्राप्त अनुभव से मोहन राकेश का रचना-संसार निर्मित है । अब हम क्रमश: उनके रचना-संसार का विवेचन करते हैं ।

मोहन राकेश ने हिन्दी साहित्य जगत में एक कहानीकार के रूप में प्रवेश किया । उनकी पहली अप्रकाशित कहानी `नन्हीं ` है, जिसे उन्होंने 1944 में लिखा था और पहली प्रकाशित कहानी `भिक्षुक` थी । उनकी अप्रकाशित कहानियों को कमलेश्वर ने `एक घटना` नाम से उनके मरणोपरान्त प्रकाशित करवाया था । उनके पांच कहानी संग्रह उपलब्ध हैं -`इन्सान के खण्डहर` (1950), `नए बादल` (1957), `जानवर और जानवर` (1958), `एक और जिन्दगी` (1961), और `फौलाद का आकाश` (1966) ।उनकी कहानियों में विषय का वैविध्य दिखाई पड़ता है । कुछ कहानियां यदि अतृप्ति, तनाव, अकेलेपन, व्यर्थता बोध को लेकर लिखी गयी हैं तो कुछ मानवीय सम्बन्धों पर आधारित हैं । कुछ कहानियां यदि दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित हैं तो कुछ धार्मिक-सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं के विरोध को लेकर लिखी गयी हैं । उन्होंने देश विभाजन की पीड़ा और आर्थिक विपन्नता से त्रस्त मामूली आदमी की पीड़ा से भी सम्बन्धित कहानियां लिखीं । उनकी प्रथम कहानी `नन्हीं ` बाल मनोविज्ञान पर आधारित है । उन्होंने कुल साठ से भी अधिक कहानियां लिखीं । यहां उनकी सभी कहानियों का विवरण देना मुश्किल है । अत: कुछ मुख्य कहानियों पर ही प्रकाश डाला जा रहा है ।

`मिस पाल`,`वारिस`,`जख्म` पात्रों के अकेलेपन और ऊब के प्राणों की कहानियां हैं । मिस पाल अपनी नौकरी से इस्तीफा देकर अकेले एकान्त स्थान पर रह रही हैं । जीवन में उन्हें कभी भी स्नेह और सुख नहीं मिला । अत: उन्हें अकेलेपन की ही जिन्दगी प्रिय हो गयी है । `वारिस` के मास्टर साहिब चार दिनों से एक गंदी कोठरी में टाइफाइड से पीड़ित होकर पड़े हैं । कोई उनका हाल तक पूछने वाला नहीं है । वे इस अकेलेपन से ऊब गए हैं । `जख्म` का वह अकेलेपन से लड़ने के लिए कभी शराब का सहारा लेता है तो कभी दोस्तों का ।

`खाली`, `अपरिचित`, `फौलाद का आकाश`, `सुहागिनें`, `उसकी रोटी`, `एक और जिंदगी` मूलत: दाम्पत्य जीवन से संबंधित कहानियां हैं। `खाली` शहर के मध्यवर्गीय परिवार में पति-पत्नी के बीच तनावपूर्ण स्थिति को भोगे जाने की कहानी है। `अपरिचित` की विवाहित स्त्री और `मैं` दोनों ही अपने-अपने जीवन साथियों से रुचि एवं विचार की भिन्नता तथा आदतों के वैषम्य के कारण असंतुष्ट हैं। `फौलाद का आकाश` की मीरा अपने पति रवि के साथ दिन रात रहती है, लेकिन उन दोनों के बीच जो फासला है, वह कम ही नहीं हो पाता। `सुहागिनें` की मनोरमा चाह कर भी आर्थिक कारणों के कारण अपने पति के पास नहीं रह पाती। `उसकी रोटी` में दाम्पत्य जीवन के यथार्थ व्यौरे हैं जो नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हैं। `एक और जिंदगी` मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानी है। यह आज के वैवाहिक जीवन के ट्रैजिक तनाव को पूरी गहराई के साथ आंकती है।

`जानवर और जानवर`, `एक ठहरा हुआ चाकू`, `नए बादल`, `हवा मुर्ग`, `परमात्मा का कुत्ता`, `मलबे का मालिक`, मोहन राकेश की अन्य प्रसिद्ध कहानियां हैं। `जानवर और जानवर` धार्मिक पाखण्ड के विरोध को लेकर लिखी गयी है। `एक ठहरा हुआ चाकू` में समाज में व्याप्त उन गुंडे बदमाशों के आतंक का चित्रण है जो बात-बात में चाकू घोंप देते हैं और उनके खिलाफ कोई आवाज तक नहीं उठा पाता। `नए बादल` नए मूल्यों के उद्भव की सूचना देती है। `हवा मुर्ग` राजनीति पर एक करारा व्यंग्य है। `परमात्मा का कुत्ता` एक सशक्त कहानी है। इसमें सरकारी व्यवस्था की जंग लगी मशीनरी पर करारा प्रहार किया गया है। देश-विभाजन की विभीषिका से उत्पन्न पीड़ा को `मलबे के मालिक` में बहुत ही सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार मोहन राकेश की कहानियों में कहीं उनका भोगा हुआ सत्य व्यक्त है तो कहींयुग-सत्य । नई कहानी की सभी विशेषताएं उन के यहां मौजूद हैं । उनकी कहानियों की भाषा नाटकीय भंगिमा लिए हुए है ।

मोहन राकेश की सृजनात्मक प्रतिभा का दूसरा क्षेत्र है उपन्यास । `अन्धेरे बंद कमरे`, `न आने वाला कल`, `अंतराल` उनके प्रसिद्ध उपन्यास है । उनके उपन्यासों के भी प्राय: वही विषय है जो उनकी कहानियों में है, जैसे आधुनिक बोध, स्त्री पुरुष के सम्बन्धों का विघटन और तनाव, व्यक्ति की अपनी पहचान बनाने की समस्या एवं समाज में प्रतिष्ठा की आकांक्षा, अतृप्ति, अकेलापन, घुटन आदि।

`अन्धेरे बंद कमरे` वस्तुत: नागरिक जीवन में रूढ़िग्रस्त संस्कारों की यातना की कथा है । यह दिल्ली शहर पर लिखा गया एक बड़ा उपन्यास है । दिल्ली के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष प्रस्तुत करने वाला यह यथार्थवादी उपन्यास एक प्रकार से महानगर के विद्रूप का अंकन करता है । व्यक्ति एक ही स्तर पर जीवन नहीं जीता, बल्कि वह अनेक स्तरों पर जीवन जीता हैया जीने का स्वांग करता है । इस उपन्यास में जीने के कई स्वांग हैं । श्रीकांत वर्मा ने इस उपन्यास को दूसरों का नरक कहा है । नीलिमा और हरवंश एक दूसरे से कट कर भी न कटने के लिए अभिशप्त है। दोनों के नागरिक अन्तर्द्वन्द्व का यह उपन्यास मानव नियति की कतिपय भंगिमाओं को चित्रित करता है ।

`न आने वाला कल` उपन्यास दैनंदिन की बढ़ती अकुलाहट, जीवन व्यापी विषाद, शून्यता, दाम्पत्य जीवन की असफलता की कहानी है । इसका नायक इन चीजों से मुक्ति या छुटकारा पाने का प्रयास करता है ।

`अंतराल` में आज की जटिल मन:स्थिति का चित्रण मूलत: स्त्री-पुरुष के द्वन्द्व के माध्यम से हुआ है । इसमें वे एक ओर सम्बन्ध उन्मुक्तता की मांग करते हैं तो दूसरी ओर संस्कारों से जकड़े हुए हैं । इस सम्बन्ध को क्या नाम दिया जाय ? यही `अंतराल` का कथ्य है ।

मोहन राकेश की वास्तविक सृजनात्मक प्रतिभा उनके नाटकों के माध्यम से मुखरित हुई है । स्वतन्त्र भारत के अब तक के वे सर्वाधिक सफल नाटककार रहे हैं । `आषाढ़ का एक दिन`, `लहरों के राजहंस`, `आधे-अधूरे` उनके पूर्ण नाटक हैं । `पैर तले की जमीन` उनका अपूर्ण नाटक है, जिसे कमलेश्वर ने पूरा किया ।

`आषाढ़ का एक दिन` उनका सर्वाधिक चर्चित नाटक है । यह कालिदास के जीवन पर आधारित है । उन्होंने ऐतिहासिक कथानक पर आधारित इस नाटक में समकालीन बोध को कुशलतापूर्वक पिरो दिया है । तीन अंकों में विभाजित यह नाटक रचनाकार की सृजनात्मक प्रतिभा की समस्या को लेकर चलता है । रचनाकार और राजसत्ता के जटिल सम्बन्ध को कालिदास के माध्यम से यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । व्यक्ति अपने परिवेश से कट कर नहीं रह सकता । उसका प्रेरणा-स्रोत सूख जाता है । कालिदास के जीवन की भी अन्तत: यही परिणति होती है । राजसत्ता को अपना कर वह अपने परिवेश और जीवन की विशालता से कट जाता है । `उसके हृदय में बहुत कुछ आषाढ़ के बादलों की तरह उमड़-उमड़ कर व्याकुलता उत्पन्न करता रहा, परन्तु अनुकूल वायु और परिवेश के अभाव में बरस कर शब्दों में रूपायित नहीं हो पाता । कालिदास और मल्लिका के माध्यम से प्रेम सम्बन्ध की समस्या को भी अत्यन्त ही संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

`लहरों के राजहंस` अश्वघोष की कृति `सौन्दरनंद` पर आधारित है । कपिलवस्तु का राजकुमार नंद गौतम बुद्ध का छोटा भाई है । वह अपनी पत्नी सुंदरी के प्रति आसक्त है । उसके आकर्षण का दूसरा केन्द्र बिन्दु महात्मा बुद्ध हैं । वह काम और अध्यात्म के इन दो बिन्दुओं के बीच भटकता दिखाई देता है । लेकिन यह काम और अध्यात्म की कथा नहीं है, बल्कि इसमें नंद और सुन्दरी के माध्यम से स्त्री-पुरुष के `अहम्` की टकराहट को दिखाया गया है । अन्ततः मुंडित मस्तक नंद को देखकर सुंदरी का अहंकार खण्ड-खण्ड हो जाता है ।

`आधे-अधूरे` स्वातंत्र्योत्तर भारत का पहला हिन्दी नाटक है जिसमें टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी कही गई है जिसमें कुल पांच सदस्य हैं - पति, पत्नी, लड़का और दो लड़कियां । पति महेन्द्र प्रताप पत्नी सावित्री की कमाई खाता है । पति-पत्नी एक दूसरे से नफरत करते हैं । घर की जिंदगी समेटने के प्रयास में स्वयं सावित्री की जिंदगी बिखर जाती है । अपनी टूटन को समेटने केलिए वह अन्य पुरुषों का सहारा लेती है, लेकिन सभी आधे-अधूरे साबित होते हैं । अंत में अपने व्यक्तित्वहीन अधूरे पति के साथ अपनी शेष जिंदगी काट देने के लिए अभिशप्त हो जाती है । बड़ी लड़की मां के प्रेमी के साथ घर से भाग जाती है, लेकिन फिर वापस लौट आती है । छोटी लड़की को भी घर काटने दौड़ता है । सभी घर छोड़ने को तैयार हैं, लेकिन घर किसी को नहीं छोड़ता ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मोहन राकेश `आषाढ़ का एक दिन`, `लहरों के राजहंस` में जहां अतीत के माध्यम से वर्तमान को मुखरित करने का प्रयास करते हैं, वहीं `आधे-अधूरे` में सीधे वर्तमान से साक्षात्कार करते हैं । इसके सभी पात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति और आचरण में

अधूरे हैं । अधूरेपन का यह अहसास हमारे युग की नियति है । लेकिन यह नाटक जीवन और समाज के वृहत्तर आयाम से नहीं जुड़ पाता ।

`पैर तले की जमीन` में भी व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन से ले कर सामाजिक जीवन तक में व्याप्त विसंगति, निरर्थकता, अवसाद, घुटन तथा मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन को मूर्त किया गया । टूरिस्ट क्लब आफ इंडिया` इस नाटक का केन्द्रीय घटना स्थल है। जहां पुल टूट जाने के कारण कुछ लोग कैद हैं । क्लब में नित्य प्रति आने वाले ये लोग व्यक्तिगत जीवन में पराजित, टूटे हुए और कुंठाग्रस्त हैं । अपने खालीपन और कुंठा को दूर करने के लिए ये लोग ताश खेलते हैं, शराब पीते हैं, पाश्चात्य संगीत के शोर का सहारा लेते हैं । रास्ता बंद हो जाने के कारण इन्हें अपनी आसन्न मृत्यु का खतरा नजर आने लगा । उस दौरान से ये लोग जो जो हरकतें करते हैं, उससे उनका असली चेहरा सामने आता है । चारों ओर से किसी प्रकार की सहायता की आशा न मिलने पर ये पैदायशी बुजदिल आत्महत्या का निश्चय करते हैं । तभी बाढ़ से घिरे इन लोगों की सहायता के लिए कुछ लोग आ जाते हैं । पुन: वे अपने मुखौटे वाला रूप धारण कर लेते हैं और एक दूसरे से कटने लगते हैं । इस प्रकार आसन्न मृत्यु के क्षण में मनुष्य के वास्तविक रूप को दिखाने वाला यह नाटक अपने कथानक में वर्तमान जीवन का सशक्त प्रतीक है ।

मोहन राकेश ने उपरोक्त नाटकों के अलावा एकांकियाँ, बीज नाटक, पार्श्व नाटक एवं ध्वनि नाटक भी लिखे । इनमें जो विषय लिए गए हैं, उनके बीज रूप हमें अन्य नाटकों में भी मिल जाते हैं । उनकी `अंडे के छिलके` अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` नामक पुस्तक में चार एकांकी - `अंडे के छिलके`, `सिपाही की मां `, `प्यालियां टूटती हैं `,

`बहुत बड़ा सवाल`, `दो बीज नाटक -`शायद`, `हं :` तथा एक पार्श्व नाटक `छतरियां` संकलित हैं । नाटकों की भांति इनका भी साहित्य एवं मंच की दृष्टि से समान महत्व है । इस पुस्तक की विस्तृत विवेचना हम अगले अध्याय में करेंगे ।

`रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक` आधुनिक ध्वनि नाटकों में उल्लेखनीय हैं । `अंडे के छिलके` संग्रह की भांति इसका भी प्रकाशन उनके मरणोपरांत 1974 में हुआ । इस पुस्तक में तीन स्वतंत्र ध्वनि नाटक - `सुबह से पहले`, `कुंवारी धरती`, `दूध और दांत`, `दो पूर्ण नाटकों के ध्वनि रूपान्तर - `रात बीतने तक`, `आषाढ़ का एक दिन`, एक संस्कृत नाटक का हिन्दी रूपान्तर - `स्वप्नवासवदत्तम्`, एक कहानी का ध्वनि रूपांतर -`उसकी रोटी` तथा एक उनके संस्मरण का ध्वनि रूपांतर - `आखिरी चट्टान तक` संकलित है ।

`रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक` का पहला नाटक`रात बीतने तक` है। यह `लहरों के राजहंस` का पूर्व रूप है । नाटक का कथानक सुगठित और मार्मिक है । फिर भी इसमें नंद के संघर्ष को पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिल सकी ।

इस संग्रह का दूसरा ध्वनि नाटक `स्वप्नवासवदत्तम्` मूलत: भास के नाटक का हिन्दी रूपांतर है । राकेश की प्रतिभा ने इसे मात्र अनुवाद होने से बचा लिया है ।

`सुबह से पहले` ध्वनि नाटक रेडियो फैंटेसी है । शुरू से अंत तक काल्पनिक घटनाओं और रहस्यपूर्ण वातावरण से कथानक निर्मित है ।

`कुंवारी धरती` यथार्थ का आधार लिए हुए है । इसका कथानक

मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित है जिसमें नाटककार ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत में नारी की परिवर्तित स्थिति का विश्लेषण किया है । इस का कथ्य रजनी नामक युवती पर केन्द्रित है । इस संग्रह के ध्वनि नाटकों में यह सर्वाधिक मर्मस्पर्शी नाटक है ।

`उसकी रोटी` राकेश की इसी नाम की कहानी का रेडियो रूपांतर है । इस कहानी के परिवेश में पंजाब की धरती की गंध है । इसका कथानक ट्रांसपोर्ट ड्राइवर सुच्चा सिंह की पत्नी बालो के व्यक्तित्व पर आधारित है जो पति की उपेक्षा सहती हुई भी उसे परमेश्वर की तरह मानती है और चिलचिलाती धूप में उसकी रोटी लेकर जाती है । बालो जैसे नारी पात्रों के माध्यम से पता चलता है कि तमाम नारी जागरण के बावजूद समाज में उस जैसी स्त्रियां अभी भी हैं ।

TH-15260

`आषाढ़ का एक दिन` मोहन राकेश के ही पूर्व रचित नाटक `आषाढ़ का एक दिन` का ध्वनि रूपान्तर है । वर्षा और मेघ-गर्जन की ध्वनि, सशक्त संवादों और स्वगत से तथा करुण वाद्य संगीत के प्रयोग से नाटककार ने इसे एक सफल ध्वनि-नाटक का रूप दिया है ।

`दूध और दांत` नामक नाटक में बाढ़ से उत्पन्न त्रासदी का करुण चित्रण है । यह बाढ़ जगत की कालिमा का एक ही दिन में परिचय दे जाती है । लोगों का बेघरबार हो जाना, बच्चों के भूख की व्याकुलता और ऐसी स्थिति में रोटी का लालच देकर शरीर खरीदने वाले लोगों का बहुत ही मार्मिक और यथार्थवादी अंकन इस नाटक में किया गया है ।

`आखिरी चट्टान तक` उनके यात्रा-संस्मरण का ध्वनि रूपान्तर है । यह ध्वनि नाटक अन्य ध्वनि नाटकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाया है ।

Jawaharlal Nehru University Library

मोहन राकेश का रचना-संसार कहानी, उपन्यास, नाटक एवं एकांकियों तक ही सीमित नहीं है, वह हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं तक फैला हुआ है । उन्होंने उपरोक्त विधाओं के अतिरिक्त निबन्ध, यात्रा-संस्मरण, जीवनियां, आत्मकथा, डायरी आदि भी लिखी है। उन्होंने 2 कविताएं भी लिखी हैं । उनकी कुछ रचनाएं उनके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो गयी थीं और कुछ उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हो रही हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मोहन राकेश का रचना संसार काफी विस्तृत है । हिन्दी की प्राय: समस्त विधाओं में उन्होंने अपने को आजमाने की कोशिश की और सफल भी हुए । नाटककार के रूप में तो उन्हें अप्रतिम सफलता मिली । वे यथार्थ बोध के रचनाकार हैं । उनका रचना संसार उनके जीवन-सत्य और युग-सत्य के सूत्रों से निर्मित है । उन की रचनाओं में विषय का वैविध्य तो मिलता है, लेकिन अन्तत: वे एक ही विषय - दाम्पत्य जीवन या स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध - के इर्द-गिर्द घूमते दिखाई देते हैं, जिससे उनकी भिन्न-भिन्न विधाओं की रचनाओं को पढ़ने पर भी एक जैसी ही अनुभूति होती है ।

अध्याय दो

हिन्दी एकांकी और 'अंडे के छिलके' संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन

(क) हिन्दी एकांकी का स्वरूप और प्रमुख एकांकी

(ख) 'अण्डे के छिलके' संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन

हिन्दी एकांकी का स्वरूप और प्रमुख एकांकी

भारतवर्ष में नाटक की परम्परा अति प्राचीन रही है । यद्यपि संस्कृत में एकांकी की रचना नहीं होती थी, पर संस्कृत में लघु नाटक के रूप में अंक, वीथी, व्यायोग, गोष्ठी, रासक और प्रहसन जैसे रूपभेद थे जो कि एकांकी की समता रखते हैं । संस्कृत एकांकियों के विषय में लिखते हुए डा० कीथ एक अंक में समाप्त होने वाले इन नाटकों की एकांकी (वन-एक्ट प्ले) की संज्ञा देते हैं ।[1] डा० दशरथ ओझा के अनुसार - 'इस दृष्टि से परीक्षण करने पर रूपकों में व्यायोग, उत्सृष्टांक, भाण, वीथी, और प्रहसन एकांकी हैं । उपरूपकों में नाट्य रासक, रासक, गोष्ठी आदि अल्प-परिवर्तन के साथ एकांकी की ही कोटि में आते हैं ।'[2]

यद्यपि आज के एकांकी संस्कृत एकांकी तत्व के आधार पर नहीं लिखे गये हैं । संस्कृत में एकांकी नाटकों की विविधता थी । पर आधुनिक एकांकी से तुलना करने पर संस्कृत नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष तथा मानसिक प्रक्रिया का वह विश्लेषण नहीं पाया जाता जो आधुनिक एकांकी का प्राण है । फिर भी हिन्दी एकांकी के विकास के लिए और तत्व प्रयोग की दृष्टि से भी संस्कृत एकांकी के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । रामचरण महेन्द्र लिखते हैं - 'नाट्याचार्यों ने संस्कृत साहित्य में एकांकी के महत्वपूर्ण प्रयोग किये थे और एकांकी निर्माण के निमित्त नाट्यकारों के लिए नियम निर्धारित किये थे । संस्कृत एकांकी की टेकनीक यथेष्ट तथा रंगमंच के अनुभव के पश्चात् निर्धारित की गई थी ।'[3]

---

1. अल्का : 'द संस्कृत ड्रामा', पृ० 267
2. दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, पृ० 369
3. रामचरण महेन्द्र : हिन्दी एकांकी, तत्व, विकास एवं प्रमुख एकांकीकार, पृ० 14

व्यक्ति के दैनिक जीवन की व्यस्तता के कारण उनके पास लम्बे-लम्बे उपन्यास, कहानी, काव्य एवं नाटक पढ़ने एवं सुनने का समय नहीं रहा और न ही उनके पास रंगमंच अभिनय देखने एवं मनोरंजन करने का समय रहा । इसलिए एकांकी का जन्म हुआ जो कम समय में और मनोरंजन कर सके । दूसरी तरफ पारसी व्यावसायिक रंगमंच लगभग लुप्तप्राय हो चुका था । एक और कारण रेडियो नाटकों के प्रचार और पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार ने भी एकांकी की रचना करने की प्रेरणा दी । अत: एकांकी का जन्म आधुनिक युग की मन्त्रणापूर्ण द्रुतगमिता तथा संघर्षमय जीवन की जटिलताओं-व्यस्तताओं का ही परिणाम है ।

पश्चिम में विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन होने लगा । जीवन में व्यस्तता, जटिलता, औद्योगिकविकास ने व्यक्ति को मशीन बना दिया है । आधुनिक हिन्दी एकांकी का जन्म पाश्चात्य एकांकियों के प्रभाव स्वरूप माना जाता है । विशेषत: शा का अधिक प्रभाव पड़ा । यही नहीं, आधुनिक एकांकी के जन्म के साथ-साथ पश्चिमी एकांकी का प्रभाव इसके अन्य तत्वों - तात्कालिक नाट्यकला, भाषा शैली आदि पर भी दिखाई देता है । पुरुष-स्त्री के आधुनिक सम्बन्धों को दिन-प्रतिदिन के सम्वादों में सांकेतिकता के द्वारा अभि-व्यक्त किया जाने लगा ।

पश्चिम में एकांकी को कार्टेन रेजर` कहा जाता था । इस एकांकी के जन्म की भी दिलचस्प घटना बताई जाती है । थियेटर में जब तक मुख्य अतिथि नहीं पहुंच जाते, तब तक नाटक का अभिनय शुरू नहीं किया जाता था । अत: अन्य दर्शकों के लिए जो पहले से थियेटर में पहुंच गये हैं, उनके मनोरंजक के लिए कोई बीस-तीस मिनट का छोटा सा अभिनय दिखाया

जाता था । ताकि दर्शक बैठे-बैठे बोर न हों । इसलिए इस अभिनय को `कर्टेन रेजर` इतना लोकप्रिय हो गया कि इसको एक स्वतन्त्र एकांकी विधा के रूप में माना जाने लगा ।

हिन्दी एकांकी के नवीन रूप का प्राय: भारतीय लेखकों ने पाश्चात्य प्रभाव भी स्वीकार किये हैं । यह बात काफी हद तक सही भी है । परन्तु आधुनिक हिन्दी एकांकी पश्चिम केअन्धानुकरण करने के उद्देश्य से नहीं किया था, हालांकि एकांकी का जन्म पश्चिम में पहले हुआ और अपने देश में बाद में । उसका कारण जिन परिस्थितियों में एकांकी की जरूरत होती थी, वह परिस्थिति हमारे देश में बहुत बाद में आयी । तथा हमारे देश में जीवन में आने वाले द्वन्द्व की महत्ता न होने के कारण विचार एवं द्वन्द्व पर ध्यान केन्द्रित नहीं होता था । इसलिए लेखकों ने द्वन्द्व से सम्बन्धित विषयों पर कभी एकाग्रता से विचार नहीं किया, जो कि एकांकी में इसका प्राण तत्व होता है । इसलिए डा० नगेन्द्र ने लिखा है --

`यह सब देखते हुए तो हमें सत्य की रक्षा के लिए थोड़ी देर अपने देश-प्रेम को दबा कर स्वीकार करना होगा कि हिन्दी का एकांकी उसकी कहानी की तरह पश्चिम से ही आया है ।`[1]

एकांकी की परिभाषा

एकांकी की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती परन्तु अधिकांश लेखक यह मानते हैं कि एकांकी एक अंक वाली रचना को कहते

---

1. डा० नगेन्द्र : `आधुनिक हिन्दी नाटक`, पृ० 119
2. (सं०) भारतभूषण अग्रवाल : `एकांकी नवरत्न` की भूमिका में ।

हैं । एकांकी समस्त पद है जो दो शब्दों से मिल कर बना है । एक + अंक + ी । इसलिए इसका अर्थ हुआ - एक अंक वाला ।

भारतभूषण अग्रवाल ने एकांकी की परिभाषा इस प्रकार दी है --'एकांकी अथवा एकांकी नाटक उस नाटक को कहते हैं, जिसमें केवल एक ही अंक होता है ।'[1] डा० राकेश गुप्त एकांकी के प्रयोगों के आधार पर लक्षण निर्धारण करते हुए कहते हैं --'हिन्दी नाटक साहित्य का वह रूप विधान है, जिसके माध्यम से मानव-जीवन के किसी एक पहलू, एक विशेष परिस्थिति, एक महत्वपूर्ण घटना अथवा एक भाव की ऐसी कलापूर्ण व्यंजना की जाती है कि उसके प्रभावैक्य से पाठक तथा प्रेक्षकों के मन पर, अमिट छाप अंकित हो जाए ।'[2]

डा० दशरथ ओझा ने आधुनिक एकांकी की परिभाषा इस प्रकार दी है -- जो नाटक एक अंक में समाप्त होने वाला एक सुनिश्चित लक्ष्य वाला हो, एक ही घटना, एक ही परिस्थिति और एक ही समस्या वाला हो, जिसके कथानक में कौतूहल और वेग, गति में विद्युत सी वक्रता और वेणी विकास में एकाग्रता और आकस्मिकता के साथ चरम सीमा तक पहुंचाने की व्यग्रता हो और जिस का पर्यवसान चरम सीमा पर ही प्रभाव की तीव्रता के साथ हो जाता हो, जिसमें प्रासंगिक कथाओं का प्राय: निषेध, घटनाओं की विविधता का निवारण तथा चारित्रिक प्रस्फुटन में आदि, मध्य और अवसान का वर्णन हो, उसे एकांकी कहना चाहिए ।'[3]

---

1. (सं०) भारतभूषण अग्रवाल : 'एकांकी नवरत्न' की भूमिका से ।
2. सम्पादक डा० राकेश गुप्त - 'एकायन' की भूमिका में ।
3. डा० दशरथ ओझा, 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास', पृ० 321

अत: एकांकी वही है जो कथा-आरम्भ से जिज्ञासा एवं कौतूहल उत्पन्न करते हुए कथा का रहस्य चरम सीमा पर पहुंचा कर समाप्त हो जाए ।

जहां तक एकांकी के स्वरूप का प्रश्न है, एकांकी की सीमा ही उसका स्वरूप निर्धारित करती है । उसके विस्तार के सम्बन्ध में कोई नियम निधारित नहीं है, फिर भी यह सभी मानते हैं कि एकांकी एक अंक में समाप्त होने वाला नाटक है और एकांकी की कहानी की तरह छोटा होता है । अत: एकांकी को अपेक्षाकृत लघु नाटक कह सकते हैं । सामान्यत: एकांकी की अभिनय-अवधि पच्चीस तीस मिनट मानी जा सकती है । पर पन्द्रह मिनट के एकांकी भी सफल एकांकी हो सकते हैं और चालीस-पचास मिनट के एकांकी भी ।

एकांकी में परिधि-संकोच एवं कथा-सकोच होता है ।इसमें विस्तार के लिए स्थान नहीं होता । कथा के आरम्भ से ही तीव्र गति से प्रवाहित होकर समाप्ति तक पहुंचता है ।डा० रामकुमार वर्मा ने एकांकी का स्वरूप विवेचित करते हुए लिखा है --

'एकांकी नाटक में अन्य प्रकार केनाटकों से विशेषता होती है । उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा तक पहुचती है । इसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता । विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भांति खिल कर पुष्प की भांति विकसित हो उठती है । उसमें लता की भांति फैलने की विशृंखलता नहीं । घटना के प्रत्येक भाग का सम्बन्ध मनुष्य शरीर के हाथ-पैर के समान है, जिसमें अनुपात से रचना होकर सौन्दर्य की सृष्टि होती है ।'[1]

---

1. डा० रामकुमार वर्मा : 'पृथ्वीराज की आखें : पूर्व रंग, पृ० 11

और डा० भुवनेश्वर महतो लिखते हैं -'जो एक ही अंक में अपना सम्पूर्ण घटनाक्रम की समग्रता की अंतर्निहित कर, मेघ-मालाओं की तरह सघन हो, भावुक के हृदय-मंच पर बरस पड़े और उन्हें रस रस सिक्त कर दे ।'[1]

एकांकी में कथा एवं घटना या प्रसंग ही मूल विचार केन्द्र है । इसलिए अन्य सभी गौण प्रसंगों का बहिष्कार होना चाहिए । इसमें मुख्य केन्द्र कथानक होने के कारण कथा के आरम्भ से लेकर अन्त तक कौतूहल एवं आकस्मिकता बनाए रखनी पड़ती है जिससे दर्शकों को शुरू से ही आकर्षण एवं रोचकता का अनुभव हो सके । एकांकी में चरित्र-चित्रण एवं कथा विस्तार के लिए अवकाश नहीं होता और एकांकीकार की दृष्टिपात्रों के चरित्र विस्तार पर न होकर कथा पर केन्द्रित रहती है ।

एकांकी में देश एवं काल की एकाग्रता एवं एकता अत्यन्त आवश्यक होती है । इसमें किसी भी प्रकार का वस्तु विभेद सह्य नहीं होता । पूर्ण रूप से एकांकीकार को कथा-उद्देश्य पर एकाग्र रहना चाहिए इस लिए गौण विषय-दृश्य एवं गौण पात्रों का विस्तार करके उसकी एकता को खण्डित न कर दे, इस बात का लेखक को विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए । यही कथानक, काल, स्थान की एकता से आकस्मिकता एवं रोचकता एवं कौतूहल उत्पन्न कर सकता है । इस सन्दर्भ में विजय चौहान ने लिखा है --'आदि से अन्त तक एकांकी में एकता, एकाग्रता और मित-व्ययिता अनिवार्य है ।'[2]

---

1. डा० भुवनेश्वर महतो - हिन्दी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन, पृ० 77
2. विजय चौहान - आधुनिक एकांकी, पृ० 16

एकांकी में अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्य द्वन्द्व और संघर्ष योजना अत्यावश्यक है । यह संघर्ष दो विरोधी पात्रों के बीच संघर्षों एवं द्वन्द्वों को प्रकट करता है तथा यही पात्रों की अन्त:संघर्ष एवं बाह्य संघर्षों से कथानक में गति, बल, रोचकता जिज्ञासा उत्पन्न करने के साथ-साथ मुख्य पात्र के मानसिक द्वन्द्वों, भावों का भी पता चलता है । यही द्वन्द्व दर्शकों में शुरू से अन्त तक कौतूहल एवं जिज्ञासा बनाए रखता है । इसलिए रामकुमार वर्मा द्वन्द्व को एकांकी का प्राण बल्व मानते हैं । "नाटक का प्राण उसके संघर्ष में पोषित होता है । संघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचना शक्ति में होगा, उतना ही जिज्ञासामय उसका नाटक होगा ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि एकांकी समग्र जीवन का सम्पूर्ण चित्र चित्रण नहीं, बल्कि वह किसी एक क्षण, प्रसंग, घटना का चित्रण होता है । इसलिए डा० शान्ति मालिक का कहना है कि -"इसमें एक अंक होता है । इसके माध्यम से मानव जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न हो कर उसके किसी एक क्षण, एक चरित्र एक कार्य, एक परिपार्श्व और एक भाव की कलात्मक अभिव्यंजना की जाती है ।"[2]

एकांकी एवं पूर्ण नाटक का एक विधा के अन्तर्गत होते हुए भी अन्तर दिखाई देता है । क्योंकि प्रत्येक साहित्यिक विधा की अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएं होती हैं । एकांकी भी अपने आप में स्वतन्त्र विधा है जो कि नाटक के उद्देश्य से समानता रखते हुए भी नाटक नहीं कहा जा सकता । नाटक का अभिनय जहां पर एक घण्टा से ढाई घण्टे

---

1. डा० रामकुमार वर्मा - रेशमी टाई, भूमिका में, पृ० 7
2. डा० शान्ति मालिक (सम्पादक - यश गुलाटी), वृहद साहित्यिक निबन्ध, पृ० 335

तक चलता है । नाटक वहां एकांकी का रंगमंचीय अभिनय दस मिनट से एक घण्टे तक का समय बहुत होता है । एकांकी रूप नाटक की भिन्नता यही है जो उपन्यास और कहानी में है । उपन्यास में सारे जीवन का सम्पूर्ण चित्र होता है जबकि कहानी जीवन की किसी एक घटना पर आधारित होती है । ऐसे ही पूर्ण नाटक जहां जीवन की सर्वांगीण प्रचुरता, अंकों की अनेकता, पात्रों की अधिकता एवं चरित्र चित्रण में विस्तार होता है । जब कि एकांकी में जीवन के किसी एक प्रसंग या घटना का चित्रण करना होता है । इस सन्दर्भ में डा० रामकुमार वर्मा का मत भी दृष्टव्य है --"एकांकी नाटक में साधारण नाटक से भिन्नता होती है । उसके कथानक का रूप हमारे सामने तब आता है, जब आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है । इसलिए उसके प्रारंभिक वाक्य में ही कौतूहल और जिज्ञासा की अपरिचित शक्ति हृदय को आकर्षित करती है । कथानक क्षिप्रगति से आगे बढ़ता है और एक-एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ़ कौतूहल के साथ चरम सीमा में चमक उठती है ।समस्त जीवन एक घण्टे के संघर्ष में और वर्षों की घटनायें एक आंसू या एक मुस्कान में उभर आती हैं, वे चाहे सुखान्त हो या दुखान्त ।"[1]

जिस तरह से उपन्यास लेखक का उद्देश्य एकोन्मुखता होती है और कहानी में किसी एक उद्देश्य पर केन्द्रित होता है, वैसे ही नाटक और एकांकी का उद्देश्य भी होता है । नाटक का उद्देश्य एकोन्मुख होता है जबकि एकांकी का उद्देश्य किसी एक मूल भाव बिन्दु पर ही केन्द्रित रहता है । इसलिए एकांकी में तीव्रतापूर्वक चरम सीमा पर पहुंचने

---

1. डा० रामकुमार वर्मा -"रेशमी टाई" - मेरा अनुभव भूमिका में, पृ० 19

के लिए अग्रसर रहता है । इसलिए भुवनेश्वर महतो ने लिखा है -- 'एकांकी का प्रारम्भ प्राय: संघर्ष स्थल से होता है और शीघ्र गतिशील होकर चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है । नाटक की गति धीमी होती है, किन्तु एकांकी में वेग सम्पन्न प्रवाह अनिवार्य है ।'[1]

उपन्यास और नाटक का क्रिया-व्यापार तथाप्रवृत्तियों का सामूहिक प्रभाव पड़ता है । वहां कहानी एवं एकांकी में एक ही केन्द्रीय भाव का प्रभाव पड़ता है । इसलिए कहानी एवं एकांकी का प्रभाव पाठक और दर्शकों पर अधिक संवेदनापूर्ण, रोचकता, कौतूहल, जिज्ञासा एवं आकस्मिकता उत्पन्न करता है और जी को कचोटने वाला होता है ।

सामान्यत: एकांकी नाटक में वे छोटे बड़े सभी तत्व पाये जाते हैं जो पूर्ण नाटक में माने जाते हैं । फिर भी एकांकी ने अब अपना विशेष महत्व प्राप्त कर लिया है । इसलिए नाटक और एकांकी के तत्व में समानता होते हुए भी नाटक से भिन्न दिखाई देती है।

एकांकी की विषय-वस्तु कुछ भी हो सकती है - हिन्दी में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, सभी विषयों पर लिखा गया है । इसमें लेखक को इस बात का मुख्य रूप से ध्यान रखना पड़ता है कि कथा की विषय-वस्तु के अनुरूप ही हो । जैसे कि सामाजिक एकांकी में समाज सुधार के लिए, नारी के अधिकार के लिए, दलितों का उद्धार करने के लिए, समाज से भेदभाव मिटाने के लिए । ऐतिहासिक एकांकी में देश की एकता एवं देश की मुक्ति के लिए । पौराणिक एकांकियों में जैसे व्यक्ति के महान गुणों का

---

1. भुवनेश्वर महतो, 'हिन्दी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', पृ० 80

चित्रण किया जाना चाहिए । धार्मिक में पवित्र जीवन की महत्ता बताने के लिए होना चाहिए । राजनीतिक में विभिन्न अंगों का मेल मिलाप कराने एवं चुनाव एवं प्रशासन में भ्रष्टाचार आदि बुराइयों को दूर करने के लिए लिखा जाना चाहिए ।

एकांकी का कथानक उसकी विषय-वस्तु के अनुरूप होता है । इसलिए एकांकीकार पूरी कोशिश करता है कि उसका कथानक तथा विषय जो भी हो, वह यथार्थ से जुड़े हुए हों । इसमें डा० रामचरण महेन्द्र का कहना है -- 'कथानक इतिहास पुराण, धर्म लोक,-गाथा, समाज राजनीति, मानवीयभावना, जीवन चरित्र या कोई भी प्रचारात्मक विषय कहीं से लिया जा सकता है, किन्तु वह वास्तविक जीवन से सम्बन्धित हो उसमें प्रयोग मात्र इस हद तक किया जाय कि यथार्थ का भीति समाप्त न हो ।'[1]

धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक कथानक पहले से ही ज्ञात होता है । अत: एकांकीकार को अपनी क्षमता से उसमें नवीनता लानी पड़ती है जिससे दर्शक, मन को बांध सके और दर्शकों एवं पाठकों को नयापन लगे । साथ में रोचकता कौतूहल एवं जिज्ञासा बनाए रखनी पड़ती है, क्योंकि यही एकांकी का आवश्यक गुण माना जाता है । आधुनिक एकांकीकार एकांकी की विषय समाज से चुनता है । उसमें कोई भी घटना एवं प्रसंग को उठा सकता है और वे अपने आसपास के देखे हुए एवं भोगे हुए घटनाओं, प्रसंगों को चित्रित करना पसन्द करते हैं जिससे नये विषय एवं नया प्रसंग एवं यथार्थ घटनाओं को लेखक अपनी रचना-क्षमता से उसमें पाठक-दर्शक मन को प्रारम्भ से अन्त तक रहस्यमय

---

1. डा० रामचरण महेन्द्र - हिन्दी एकांकी, उद्भव और विकास, पृ० 34

जिज्ञासा बनाए रखते हैं और यही कौतूहल, रोचकता, रहस्यमय आकस्मिकता, चमत्कार से ही एकांकी की सफलता है ।

एकांकीकार को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कथा को वह सीधे सपाट ढंग से प्रस्तुत न करे, सरल से सरल कथा को भी अपनी कला-क्षमता से रोचकता उत्पन्न कर सकते हैं ।

एकांकी में पात्र योजना भी महत्वपूर्ण होती है क्योंकि एकांकीकार स्वयं पाठक-दर्शक के सामने नहीं होता । वह पात्रों के माध्यम से अपने विचारों को पाठक-दर्शक तक पहुंचाता है । प्राचीन काल में नाटक में पात्र-योजना का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । पहले पूर्व और पश्चिम दोनों स्थानों में नाटक-पात्र या नायक अभिजातीय वर्ग से लिया जाता था । पर आज स्थिति एवं परिवेश के बदलने केसाथ ही साथ लेखकों का विचार भी बदल गयाहै । अब एकांकी का नायक किसी वर्ग-जाति का हो सकता है ।स्त्री या पुरुष हो सकता है । मुख्य नायक उच्च वर्ग से लेकर निम्न से निम्न वर्ग या जन साधारण व्यक्ति भी हो सकता है ।इसलिए रमेश तिवारी ने पात्रों के बारे में लिखा है --"आज नाटक में समाज के किसी भी वर्ग के चरित्रों को सहजतापूर्वक ग्रहण किया जाता है । चौकीदार से राष्ट्रपति तक तथा चतुर्वेदी से चन्द्रमा धोबी तक किसी को भी आज नाटक तथा एकांकी का नायक, सहनायक बनाया जा सकता है ।"[1]

समय सीमा के कारण एकांकी में कम से कम पात्र होते हैं । इसमें दो प्रकार के पात्र होते हैं । मुख्य पात्र या नायक और गौण पात्र या सहनायक । गौण पात्र की योजना मुख्य पात्र के चरित्र में सहायक के रूप में

---

1. डा० रमेश तिवारी, हिन्दी एकांकी स्वरूप और विश्लेषण, पृ० 23

के लिए की जाती है । इसलिए प्रो० रामचरण महेन्द्र का मत द्रष्टव्य है --'गौण पात्र भी मुख्य पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने या नाटकीय कथावस्तु को विकसित करने में सहायक होकर ही एकांकी में स्थान पा सकते हैं । गौण पात्र उत्तेजित, माध्यम सूचक या प्रभाव व्यंजकता के कार्यकर सकते हैं ।'[1]

गौण पात्र का आयोजन मुख्य पात्र के द्वन्द्व एवं संघर्ष के उभारने एवं चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए किया जाता है ।

एकांकीकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसका चरित्र यथार्थ के धरातल से जुड़ा हो, जिससे पात्रों में सजीवता, व्यक्तित्वान्, आकर्षणपूर्ण हो सके । तथा -'एकांकी के पात्र आश्चर्यजनक भूमि से सम्बद्ध न होकर पार्थिव हो, उनके कृत्य मानवीय हों ताकि दर्शक उनके उत्थान-पतन, हर्ष-शोक में पूर्ण सहानुभूति रख सकें, अर्थात् पात्र वास्तविक जीवन के निकट हो ।'[2]

भुवनेश्वर महतो ने भी पात्रों के विषय में इसी तरह परिचय दिया है । 'पात्र आकर्षक होना चाहिए क्यों कि पात्र नाटककार के साथ कठपुतली न होकर उसका विकास स्वाभाविक एवं सजीव रूप में होना चाहिए । दो पात्रों में विश्वसनीयता, मनोवैज्ञानिकता, अनिवार्यता, संघर्ष की तीव्रता और परिवर्तनशीलता होना आवश्यक है ।'[3]

पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्यद्वन्द्वया संघर्ष की आवश्यकता होती है जिससे पाठक-दर्शक मन में संशय पैदा कर सके । अत: एकांकी में पात्रों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है ।

---

1. प्रो० रामचरण महेन्द्र - हिन्दी एकांकी, तत्व, विकास और प्रमुख एकांकीकार, पृ० 23
2. सम्पादक - केशवदत्त एवं राकेशगुप्त, एकायन की भूमिका में, पृ० 26
3. भुवनेश्वर महतो - हिन्दी एकांकी का स रंगमंचीय अनुशीलन, पृ० 91

एकांकी में सम्वाद या कथोपकथन की योजना सबसे महत्वपूर्ण एवं एकांकी का मूल आधार होता है । क्योंकि एकांकी की सफलता उसकी सम्वाद की संक्षिप्तता एवं रोचकता पर निर्भर करती है । इसलिए डा० शान्तिमालिक कथोपकथन को एकांकी का अनिवार्य तत्व स्वीकार करते हुए कहते हैं -"इन्हीं के द्वारा एकांकी के कथा-सूत्र में गतिशीलता आने के साथ पात्रों की चारित्रिकता भी स्पष्ट होती चलती है । सम्वादों का संक्षिप्त, रोचक नाटकीयता, मर्म स्पर्शी, गतिशील, कलात्मक एवं वाग्वैदग्ध्य युक्त होना अनिवार्य है ।"[1]

सम्वाद में विस्तार के लिए स्थान नहीं है तथा वाद-विवाद - व्याख्यान उपदेश नहीं होना चाहिए । संक्षिप्त होने के कारण सभी वाक्य एवं शब्दों को नाप तौल कर तथा कम से कम शब्दों एवं छोटे-छोटे वाक्य में अधिक भाव व्यक्त करने, वातावरण के निर्माण करने और नाटकीय परिस्थिति को उद्दीप्त करने की क्षमता हो । सम्वाद की भाषा पात्रों की जाति गुण, धर्म, कर्म, उसके स्वभाव, मनोवृत्ति कथा की प्रकृति, उद्देश्य की स्थिति पर निर्भर है । यदि एक नौकर के सम्वाद और आफिस की सम्वाद, भाषा एक सी हो तो नाटक में प्रभाव, रोचक, कौतूहल उत्पन्न नहीं होगा । इसलिए रामचरण महेन्द्र सम्वाद को ही एकांकी का प्राण तत्व मानते हैं --"कथोपकथन की ही एकांकी का प्राण है । इसी के माध्यम से कथासूत्र आगे बढ़ता है, पात्रों का चारित्र-चित्र विकास होता है । इसके द्वारा कथावस्तु में तनाव और विरोधी पात्रों में द्वन्द्व उत्पन्न होता है । सम्वाद में सजीवता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता आदि का रहना आवश्यक है ।"[2]

---

1. डा० शांति मालिक, सम्पादक - यश गुलाटी, वृहद् साहित्यिक निबन्ध, पृ० 358
2. डा० रामचरण महेन्द्र - हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास, पृ० 34

अत: हम कह सकते हैं कि एकांकी की सफलता उसके सम्वाद पर निर्भर करती है । सम्वाद जितना संक्षिप्त,रोचक, जिज्ञासावर्धक, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करने वाले और व्यंग्य आदि भावों को सम्प्रेषित करने वाला होगा, उतना ही एकांकी की सफलता में निर्णायक होगा ।

एकांकी में रंग-निर्देश उसका प्राण तत्व कह सकते हैं । क्योंकि हर एकांकी में कथा संक्षिप्त होती है । इसलिए रंग-निर्देश द्वारा काम चला लिया जाता है । लेखक द्वारा कोष्ठकों में दिया गया संकेत रंगमंच के लिए महत्वपूर्ण होता है । यद्यपि यह कोष्ठक-संकेत मंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, परन्तु इसके द्वारा कई चीजों का संकेत दे दिया जाता है । जैसे कि भारत भूषण अग्रवाल ने लिखा है कि लेखक हमें पात्रों का परिचय उनकी वेशभूषा, हाव-भाव, अंग-संचालन, गतिविधि आदि का परिचय देता है, मंच सज्जा का विवरण बताता है और कार्य-व्यापार में पात्रों का योग कब और किस प्रकार हो, यह बताता है ।[1]

परन्तु लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दिये गये कोष्ठक एकांकी की सफलता में सहायक हो सकें ।

एकांकी में रंग-निर्देश की योजना नाटक के मूल विचार को उद्दीप्त करने एवं पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को, अन्त:-संघर्ष को प्रकट करने वाले पात्रों के चरित्र एवं भावों को प्रकट करने, जटिल प्रसंगों एवं प्रतीकों का स्पष्टीकरण करने के लिए किया जाता है । पात्रों के रूप-कल्पना स्थिर करने के लिए, विचारों को सम्प्रेषणीय और रंगमंच की व्यवस्था के लिए और अभिनय

---

1. भारतभूषण अग्रवाल - एकांकी नवरत्न की भूमिका में, पृ0 12

में योग देने के लिए रंग संकेतों की समुचित व्यवस्था आवश्यक है ।

एकांकी में अभिनय कला एवं रसानुभूति दोनों दृष्टियों से सफल बनाने के लिए एकांकी का उद्देश्य होना अनिवार्य है । आजकल के एकांकी मनोरंजन के लिए नहीं लिखे जाते, बल्कि जीवन से सम्यक् किसी न किसी चरित्र, घटना, या समस्या का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहता है । तथा यह उद्देश्य यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हो तो एकांकी की सफलता के लिए सबसे अधिक योग रहता है । इसलिए डा० रामेश तिवारी ने एकांकी में उद्देश्य की महत्ता को बताते हुए लिखा है - 'आज की सामाजिक विसंगतियों, जर्जर रूढ़ियों और घिसी-पिटी परम्पराओं पर जम कर प्रहार करना आज के एकांकी का मुख्य प्रयोजन है । इस प्रहार में जितनी शक्ति होगी, अथवा जितना तीखापन होगा, एकांकी उतना ही तेज तरार और जी कचोटने वाला होगा ।'[1]

अत: हम देखते हैं कि कोई भी एकांकी बिना उद्देश्य के नहीं लिखा जाता । तथा एकांकी का उद्देश्य-क्षेत्र व्यापक है । वह किसी घटना, प्रसंग को भी उठा कर अपना विषय बना सकता है ।

इस प्रकार, एकांकी अन्य विधाओं की तरह एक स्वतन्त्र विधा है । तथा अन्य विधाओं से अलग तत्व भी विद्यमान है । इसलिए उसकी रचना करते समय लेखक को उसके अवयव अथवा तत्वों पर ध्यान रखना चाहिए ।

आधुनिक हिन्दी एकांकी में जयशंकर प्रसाद के 'एक घूंट' को ही प्रथम एकांकी माना जाता है । यह एकांकी सन् 1928 में प्रकाशित हुआ था ।

---

1. डा० रामेश तिवारी - हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विश्लेषण पृ० 26

`एक घूंट` को संस्कृत नाटक परम्परा के पतन काल और आधुनिक ढांचे के एकांकी के उदय काल का द्योतक माना जाता है ।

प्रसाद के `एक घूंट` एकांकी के कारण भुवनेश्वर का `कारवां` एकांकी संग्रह प्रकाश में आया । परन्तु उनके एकांकियों को भारतीय ढांचे से अलग होने के कारण मान्यता नहीं मिली । इसलिए डा० रामकुमार वर्मा को ही हिन्दी एकांकी का जनक कहा गया । उनका पहला एकांकी संग्रह `पृथ्वीराज की आखें` सन् 1937 में छपा था । इसके बाद तो एकांकीकारों और एकांकियों की बाढ़ सी आने लगी ।

डा० रामकुमार वर्मा के अन्य एकांकी हैं - `चारु मित्रा`, `सप्त किरण`, `रूप रंग`, `कौमुदी महोत्सव`, `ध्रुव तारिका`, `रतुराज`, `रजत रश्मि`, `दीपदान`, `कामकन्दला`, `इन्द्र धनुष`, `रिमझिम` आदि । इन सभी एकांकी नाटकों में उनका आदर्शवादी दृष्टिकोण व्यक्त हैं । परन्तु इसका आधार यथार्थ जीवन के विभिन्न पक्षों से लिया है । उनका प्रतिनिधि एकांकी ` एक तोले अफीम की कीमत` माना जाता है । यह उनका प्रसिद्ध सामाजिक एकांकी है । यह मध्यवर्गीय परिवार की जर्जर आर्थिक स्थिति एवं वैवाहिक समस्या मुख्य विषय है ।

भुवनेश्वर के `कारवां` एकांकी के बाद उनकी कई एकांकी प्रकाशित हुए, जिनमें `हम अकेले नहीं हैं`, `स्ट्राइक`, `ऊसर`, `ताम्बे के कीड़े` `आजादी की नींद`, `सिकन्दर`, `अकबर` आदि महत्वपूर्ण हैं ।

इसके बाद प्रमुख एकांकीकारों में उदयशंकर भट्ट का नाम आता है । उनके एकांकी हैं -`अभिनव एकांकी नाटक, `स्त्री का हृदय`, `आदिम युग`, `समस्या का अन्त`, धूम शिखर, `अन्धकार और प्रकाश`,

`आज का आदमी` आदि । उन्होंने ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों को भी लिखा है ।

हिन्दी एकांकी में सेठ गोविन्ददास का योगदान महत्वपूर्ण है । उनके अब तक कई एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । जैसे - सप्त-रश्मि, अष्कदल, एकादशी, पंचभूत, चतुष्पथ और आप-बीती - जग बीती। उनके एकांकी ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी प्रकार के हैं । सेठ गोविन्ददास गांधीवादी दृष्टिकोण के एकांकीकार हैं । उनको एकांकी के क्षेत्र में उनके मनोवैज्ञानिक मोनोड्रामा से ही अधिक प्रसिद्धि मिली है । उनके मोनोड्रामा में `शाप और वर` `सृष्टि और प्रलय` तथा अवहेलना प्रसिद्ध हैं । `शाप और वर` में स्वगत कथन के माध्यम से अपने भावों को प्रकट किया गया है जो सेठ जी के नवीन रचना शैली का परिचायक है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं । `देवताओं की छाया में`, `तूफान से पहले`,`चरवाहे` आदिमार्ग आदि । वे यथार्थवादी एकांकीकार हैं । इनके एकांकियों में व्यक्ति की स्वार्थपरता, विद्रूपता उसके बाह्याडम्बर एवं पतनोन्मुख मान्यताओं पर व्यंग्य प्रहार किया गया है । उनके श्रेष्ठ एकांकियों में `तौलिए`, `लक्ष्मी का स्वागत`, `चुसी डाली` आदि की गणना की जाती है ।

भगवती चरण वर्मा ने `सबसे बड़ा आदमी`,`मैं और केवल मैं ` - `दो कलाकार`, `चौपाल`, `बुझता दीपक` आदि एकांकी लिखे जिस में उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण चित्रित है ।

हिन्दी एकांकी संसार में जगदीश चन्द्र माथुर मात्र संवाद और कहानी पर नहीं, बल्कि अभिनय पर अधिक विश्वास करते हैं । उनके प्रसिद्ध एकांकियों में `भोर का तारा`, `कलिंग विजय`, `रीढ़ की हड्डी`, `मकड़ी का जाला`, `खण्डहर`, `कबूतर खाने,` भाषण, बन्दी आदि । उनका `रीढ़ की हड्डी` प्रसिद्ध एकांकी है ।

जगदीश चन्द्र माथुर के बाद गोविन्द वल्लभ पंत का नाम लिया जा सकता है । उन्होंने बहुत कम एकांकी लिखे हैं । उनके एकांकियों के तकनीकी बारीकियों की सृष्टि में सफल कहे जा सकते हैं । उनके कुछ प्रसिद्ध एकांकियों के नाम हैं -- वरमाला, राजमुकुट, अंगूर की बेटी, विषकन्या आदि । `राजमुकुट` इतिहा प्रसिद्ध मेवाड़ की पन्ना धाय को लेकर लिखा गया एक ऐतिहासिक एकांकी है और इसी एकांकी से उनकी प्रसिद्धि भी मिली है । उनका `अंगूर की बेटी` भी काफी प्रसिद्ध रहा है जो शराबखोरी की मुसीबतों को लेकर लिखा गया एकांकी है ।

हरिकृष्ण प्रेमी ने न्याय का मन्दिर, मानव मन्दिर, यह भी एक खेल, घर या होटल, प्रेम अन्धा है, नया समाज, रूपशिखा इत्यादि एकांकी लिखे हैं । उन्होंने मुगलकालीन इतिहास-कथाओं को ही राष्ट्रीय चेतना का माध्यम बनाया है । `नया समाज` में हिन्दु-मुसलमानों के बीच धर्म संघर्ष को दिखाया गया है ।

विष्णु प्रभाकर आधुनिक युग के श्रेष्ठ एकांकीकारों में गिने जाते हैं । वे एक प्रसिद्ध सम्पन्न एकांकीकार हैं । उन्होंने अनगिनत एकांकी लिखे हैं । उनके कुछ प्रसिद्ध एकांकियों के नाम हैं - टूटते परिवेश, साहस, पाप, प्रतिशोध, बन्धन मुक्त, देवता की घाटी, वीरपूजा, चन्द्रकिरण,

रक्तचन्दन, मां, भाई, बंटवारा, ममता का विष इत्यादि । उनके एकांकियों का विषय विस्तृत है । सच्चे रूप में सामाजिक एकांकीकार हैं । उन्होंने अपने एकांकियों में समाज की विभिन्न समस्याओं को उठाया है । उनके `टूटते परिवेश एकांकी में आज के संयुक्त परिवार के बिखरने और टूटने का दर्द चित्रित है । इसमें पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच संघर्ष को भी दिखाया गया है । `मीना कहां है ?` एकांकी मनोवैज्ञानिक एकांकी का उत्कृष्ट उदाहरण है । यह हिन्दी एकांकी में एक अनूठा मनोवैज्ञानिक प्रयोग है । इसमें पात्र नरेश के माध्यम से एकांकीकार ने यह दिखाया है कि एक बाप किस प्रकार आर्थिक कारणों के चलते अपनी प्यारी सी बेटी को मारने के लिए मजबूर हो जाता है ।

लक्ष्मीनारायण लाल एकांकी के क्षेत्र में थोड़ा बाद में आये, परन्तु उन्होंने कई प्रसिद्ध एकांकी लिखे हैं, जैसे -- मड़वे का भोर, मम्मी ठकुराइन, दो मन चांदी, औलादी का बेटा, सुबह से पहले, कैद के पहले इत्यादि। उनका `मड़वे का भोर`, एक प्रसिद्ध सामाजिक एकांकी है । इसमें एकांकीकार में समाज में व्याप्त दहेज प्रथा, बेमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया है ।

इसके बाद प्रमुख एकांकीकारों में विनोद रस्तोगी का नाम आता है । उनके अब तक दर्जनों एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं । जैसे - पुरुष का पाप, पत्नी पति त्याग, साम्राज्य और सुहागराज, आज मेरा विवाह है, दो चांद, कसम कुरान की, `पैसा, `जनसेवा और लड़की, मुन्ना मर गया, मानव और मशीन इत्यादि । हालांकि उनके एकांकियों की ऐतिहासिक दृष्टि से अपनी कोई अलग पहचान नहीं है, फिर भी उन्होंने कई सफल एकांकी लिखे हैं । उनके अधिकांश एकांकी सामाजिक समस्याओं से ही सम्बन्धित हैं ।

इसके बाद प्रभाकर माचवे का नाम लिया जा सकता है । जिन्होंने कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, इतिहास, कला, पुरातत्व आदि में समान अधिकार रखने के साथ-साथ एकांकी की तरफ भी ध्यान दिया है । उन्होंने कई सफल एकांकी लिखे हैं । जैसे - गली की मोड़ पर, पागलखाने, पंचकला, पर्वतश्री, रामगिरि, संकट पर संकट, वधू चाहिए आदि । आगे इसी श्रेणी में कई नये एकांकीकार आते हैं । जैसे - रेवतीचरण शर्मा, गंगाधर शुक्ल, राजेन्द्र कुमार शर्मा, कर्तार सिंह दुग्गल, राजाराम शास्त्री, लक्ष्मीकान्त वर्मा इत्यादि । इन्होंने भी अपने अपने एकांकियों के माध्यम से इस विधा को समृद्ध बनाया है ।

आधुनिक एकांकीकारों में चिरंजीत का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने इस विधा को आगे बढ़ाया है । उनके `दादी का जागी`, `रंगारंग` संग्रहों जैसे कई एकांकियों के सफल एकांकी कह सकते हैं । उन्होंने एकांकी की नाटकीयता की सारी विशेषताओं को ध्यान में रखा है ।रचना तत्व रूप नाटकीयता की दृष्टि से सफल एकांकी लिखने की सम्भावना मोहन राकेश में दिखाई देती है । उनके एकांकी संग्रह `अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` में इसका उदाहरण देखा जा सकता है । जिसका विस्तृत अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे ।

(स) 'अण्डे के छिलके' संग्रह का परिचयात्मक अध्ययन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मोहन राकेश का महत्व-पूर्ण स्थान है । वैसे तो उन्होंने हिन्दी की कई विधाओं में लेखन कार्य किया है, लेकिन नाटक के क्षेत्र में उनका योगदान विशिष्ट है । नाटक के क्षेत्र में उनका आगमन उस समय होता है जब हिन्दी नाटक कल्पना और आदर्श की दुनिया को छोड़ कर वास्तविक दुनिया का चित्रण करने के लिए अग्रसर था ।उनका नाट्य-लेखन इस शृंखला में एक कड़ी के रूप में जुड़ता है । उन्होंने अपने नाटकों का मूल कथ्य विसंगत परिस्थितियों में घुटते व्यक्ति के तनाव को बनाया है । सामाजिक क्षेत्र में उस युवा वर्ग का चित्रण किया है जो प्राचीन आदर्शों और जीवन मूल्यों का न तो निर्वाह कर पाता है और न ही मूल्यों को पूर्णत: स्वीकार कर पाता है । इसलिए वह कुंठाग्रस्त रहता है । राजनीतिक की दिशाहीनता, उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार और उसके दुष्परिणामों को भी उन्होंने बखूबी चित्रित किया है । आर्थिक विषमता से उत्पन्न तनावों को भी उन्होंने गहराई से चित्रित किया है । इस प्रकार, छठे दशक का वातावरण कितना संक्रमित, दमघोंटू था और उसमें रहने वाला व्यक्ति कितना त्रस्त विक्षिप्त, अपने ही अन्तर्द्वन्द्व में उलझा हुआ था, इसी की तस्वीर मोहन राकेश के नाटकों और एकांकियों में खींची गई है ।

जहां तक `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` का प्रश्न है,इसमें भी मोहन राकेश ने अपने नाटकों के समान ही ढहती सामाजिक मान्यताओं, डूबते मानवीय सम्बन्धों, राजनैतिक तथा अन्य क्षेत्रों में भ्रष्टाचार आदि को ही संकेतित किया है । आलोच्य पुस्तक में चार एकांकियों - `अण्डे के छिलके`,`सिपाही की मां`, `प्यालियां टूटती हैं` और `बहुतबड़ा सवाल` , दो बीज नाटक - `शायद` और `हं:` तथा एक पार्श्व नाटक छतरियां संकलित हैं । वस्तुत: ये सभी आधुनिक समाज और व्यक्ति जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों का उद्घाटन करती हैं । लेकिन यह बात ध्यातव्य है कि यह पुस्तक उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई थी ।

नाट्य समीक्षकों का मानना है कि इस पुस्तक के एकांकी शायद उनकी आरम्भिक रचनाएं हैं, जो भिन्न भिन्न समय में लिखी गई हैं । इसीलिए भाषा एवं संवेदना की जो प्रौढ़ता उनके नाटकों में दिखाई देती है, वह इन एकांकियों में नहीं है। नाट्य समीक्षक गिरीश रस्तोगी ने ठीक ही अनुमान किया है कि -`तीनों ही (अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां `,`प्यालियां टूटती हैं ` बहुत आरम्भ की रचनाएं लगती हैं । भाषा, सम्वाद अभिव्यक्ति, कथ्य-शिल्प के बहुत ही सूक्ष्म स्तर इनमें नहीं मिलेंगे । साकेतिकता है लेकिन उतनी सूक्ष्म नहीं, द्वन्द्व है, लेकिन उसके भी सूक्ष्मतम सूत्रों को पकड़ने की कोशिश या सामर्थ्य यहां नहीं है । इस प्रकार ये सभी एकांकी हिन्दी के आरम्भिक एकांकियों जैसे लगते हैं जो रंगमंचीय तो हैं, लेकिन कोई गहरा रंगानुभव सूक्ष्म, सार्थक, सर्जनात्मक रंग-चेतना का बोध नहीं कराते । इस लिए लगता ऐसा है कि `आषाढ़ का एक दिन` से पहले काफी पहले ये लिखे गए होंगे । चूंकि इनके साथ कोई रचना काल नहीं दिया गया है, इसलिए इनके रूप में अनुमानत : इन्हें राकेश की आरम्भिक रचनाएं ही मानने को मन करता है ।[1]` अब हम क्रमश: आलोच्य पुस्तक की रचनाओं का संक्षिप्त विवेचन करते हैं ।

`अण्डे के छिलके , अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` पुस्तक का पहला एकांकी `अण्डे के छिलके ` है । इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा कही गई है जिसमें उस परिवार की पारम्परिक, रूढ़िवादी, खोखली मान्यताओं की हास-परिहासपूर्ण सम्वादों के माध्यम से खिल्ली उड़ाई गई है । इस मध्यवर्गीय परिवार में एक तरफ पुराने संस्कारों की प्रबलता है तो दूसरी तरफ आधुनिक युग में होने वाले नए परिवर्तनों का प्रभाव है । दोनों में टकराहट दिखाकर लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकता का खुलासा किया है । वस्तुत: मध्य वर्ग में रूढ़ियों के विरोध का साहस वैसे ही नहीं होता है, जैसे इस एकांकी के पात्रों - राधा, श्याम,

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ0 130

गोपाल आदि में नहीं है । राधा छिपाकर रामायण की जगह चन्द्रकान्ता सन्तति पढ़ती है । श्याम, गोपाल आदि अम्मा जमुना के डर से चोरी-चोरी अण्डा खाते हैं । इस प्रकार संस्कारों, मर्यादा, आदर्शवादिता की आड़ में वे सब कुछ करते हैं, जिसका दिखावटी जीवन में वे विरोध करते हैं । कथनी और करनी का यह विरोध इस वर्ग की चारित्रिक विशेषता है । लेकिन लेखक ने इस एकांकी में पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का जो द्वन्द्व दिखाया है, उसमें टकराहट तो है परन्तु क्रुता नहीं है । उनकी टकराहट बन्द कमरे में मतभेद तक ही सीमित रहती है, विद्रोह का रूप धारण नहीं करती । पूरे एकांकी में सहनशीलता, प्रेम भाव के माध्यम से एक शान्त वातावरण की ही सृष्टि की गई है

एकांकी के सभी पात्र - श्याम, राधा, गोपाल, माधव आदि परम्परा भीरु हैं । परम्परा के प्रतिकार का साहस उनमें से किसी भी पात्र में नहीं है । ये केवल बन्द कमरे में ही इस पर बहस कर सकते हैं । अपने विचारों को अपने आचरण में ढाल कर जीने का साहस किसी में नहीं है । केवल वीना ही ऐसा पात्र है जिसमें थोड़ी जीवन्तता है । उसके सम्वाद उसके निर्भीक विचारों पर प्रकाश डालते हैं ।

इस एकांकी के सम्वाद साधारण और संक्षिप्त हैं, लेकिन उनमें विनोद वृत्ति अधिक है, जिससे एकांकी का स्वरूप हास्यपरक हो जाता है -'माधव पुलटिस बनाई थी ? और तुम यह पुलटिस गले से नीचे उतार गए । (हंसकर) खूब । तो आज कल पुलटिस खाने के काम भी आने लगी । भला यह तो बताओ कि किस चीज की पुलटिस थी ? जिस चीज के यह छिलके हैं, उसी की या...'[1] रोजमर्रा की भाषा में अंग्रेजी, पंजाबी और कहीं-

---

1. मोहन राकेश -'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक', पृ० 27

कहीं हिन्दी के ठेठ शब्दों का प्रयोग कर कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाया है ।

दूसरा एकांकी है सिपाही की मां, जिसमें दो दृश्य हैं । इसका कथानक युद्ध की विभीषिका से सम्बन्धित है । इसमें प्रत्यक्ष रूप से तो युद्ध होता नहीं दिखाया गया है, लेकिन लेखक ने बर्मा की दो लड़कियों के माध्यम से सम्वादों का जो विधान किया है, उससे युद्ध के साथ-साथ उसके दुष्प्रभावों का मन चित्र साकार हो उठता है । आरम्भिक रंग संकेतों से स्पष्ट है कि कथा देहात के एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से कही गयी है । बिशनी इतनी गरीब है कि उसे अपने एकलौते बेटे मानक की बर्मा की लड़ाई में भेजना पड़ता है, क्योंकि घर में एक जवान होती लड़की मुन्नी है, जिसका व्याह करना है । एकमात्र मानक का ही भरोसा है, जो घर से न जाने कितनी दूर है । मां-बेटी मंगलवार की डाक का बहुत बेसब्री से इन्तजार करती रहती हैं । उन्हें आशा है कि एक दिन उनका मानक जरूर वापस आएगा, यहीं पहला दृश्य समाप्त होता है ।

कहते हैं कि व्यक्ति दिन भर जिस विषय पर सोचता है, रात में वही स्वप्न बन जाती है । दूसरे दृश्य में बिशनी के उसी दु:स्वप्न को दिखाया गया है, जिसके विषय में वह दिन भर सोचती रहती है । सपने में यह लहूलुहान मानक को देखती है । एक सैनिक उसे जान से मार डालने के लिए उसका पीछा करता हुआ उसके घर तक चला आया है ।मानक और सैनिक के संघर्ष को दिखाकर लेखक ने युद्ध के वातावरण को मूर्त कर दिया है । बिशनी सैनिक को समझाती है कि वह मानक को न मारे क्योंकि उसके मानक ने कभी किसी को नहीं मारा है , एक चींटी तक भी नहीं । सैनिक बिशनी को अपना शरीर दिखाता है जिसके घाव उसके बेटे ने ही दिए हैं । बिशनी और सैनिक के सम्वादों से पता चलता है कि सैनिक के

घर की स्थिति भी बिशनी के घर की ही तरह शोचनीय है । अन्त में बिशनी का सपना टूटता है और ईश्वर की प्रार्थना , जो ठेठ पंजाबी में है, के साथ पर्दा गिरता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध की विभीषिका व्यक्ति को कितना अमानवीय बना देती है । करुणा, दया आदि मानवीय भावों का हरण कर लेती है । मां से उसका बेटा छीन लेती है, बहन से भाई छीन लेती है, पत्नी से उसका पति छीन कर उसे आत्महत्या करने को मजबूर कर देती है ।डा० रीता कुमार ने इस एकांकी पर टिप्पणी करते हुए लिखा है --'वस्तुत: यह एकांकी देश-प्रेम और वीरता के एक स्थापित आदर्श से हट कर, एक कटु यथार्थ को उद्घाटित करता है जहां धन से विवश होकर एक माता अपने हृदय के टुकड़े पुत्र को, बहन भाई को और पत्नी पति को युद्ध की विषैली अग्नि में झोंक देती है और अपना सर्वस्व लुटाने वाले सिपाहियों की स्थिति जब 'सिपाही की मां' जैसी रहती है, तब उन से राष्ट्र के लिए किसी ऊंचे आदर्श की अपेक्षा ही कैसे की जा सकती है ।'[1] इन शब्दों में आज की सचाई का बयान है तो एकांकी आज के भारत की दशा भी अंकित कर रहा है ।

बिशनी कुन्ती, मुन्नी, दीनू, लड़की 1, लड़की2, मानक सिपाही आदि इस एकांकी के पात्र हैं । बिशनी के रूप में लेखक ने मां की ममता और करुणा को साकार कर दिया है । दीनू और कुन्ती ऐसे पात्रों के रूप में चित्रित हैं, जिसका कार्य केवल दूसरे के घावों पर नमक छिड़कना है । मानक पहले दृश्य में अनुपस्थित है, पर बाद में एकांकी में यह अप्रत्यक्ष रूप से उपस्थित है ।

सम्वाद पात्रानुकूल हैं । लेखक ने लड़कियों और सिपाही के संवादों के माध्यम से युद्ध के वातावरण को मूर्त कर दिया है । भाषा देहाती

---

1. डा० रीता कुमार, 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में', पृ० 322-323

वातावरण को मूर्त करने में सर्वथा समर्थ है । कबूतरों की गुटरगू, टिड्डियों की चिकचिक, अन्धेरा आदि वातावरण के भयावहता और सूनेपन को बढ़ाते हैं । अन्त में गिरिश रस्तोगी के शब्दों में -"राकेश के हृदय की करुणा और भावुकता ही इसमें ज्यादा उभरी है । एकांकी लिखा तो गया है सोद्देश्य विरोधी साहित्य का अभियान के रूप में, लेकिन उस उद्देश्य की प्रस्तुति अभिव्यक्ति संघटना बड़ी स्थूल हं और साथ ही नाटककार की अपरिपक्व बुद्धि का उदाहरण भी । लेकिन इसमें रंग-निर्देशों - ध्वनि-प्रभावों, प्रकाश-व्यवस्थाओं में पहले एकांकी की तुलना में अधिक सांकेतिकता और पात्रों की आन्तरिक स्थिति से उनका अधिक समान्तस्य दीखता है ।"[1]

संग्रह का तीसरा एकांकी है - 'प्यालियाँ टूटती हैं'। यह एकांकी आज के सत्य को बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत करता है। देश-विभाजन के बाद सम्बन्धों को ताक पर रख धन एक ऐसा मुद्दा हो गया जिस के अनुसार किसी व्यक्ति की सामाजिक हैसियत आंकी जाने लगी । पाकिस्तान से खाली हाथ आने के कारण दीवानचन्द जड़ से उखड़ा हुआ ऐसा ही पात्र है । एकांकी का कथानक उसी की करुणा स्थिति को लेकर चलता है । भोलानाथ जो हाल ही में अमीर हुआ है, के पास आर्थिक सहायता के लिए आता है। दीवान चन्द जिस दिन उनके यहां आता है, उसी दिन वे लोग मिसेज मेहता को चाय पर बुलाए रहते हैं । परिवार के सभी सदस्य माधुरी, मीरा, नौकर महिपत आदि उसी की तैयारी में व्यस्त रहते हैं । दीवानचन्द का आना सभी को बहुत बुरा लगता है । माधुरी को सबसे ज्यादा झुंझलाहट होती है । दीवानचन्द का आना उसे 'अनिष्ट' लगता है । सभी कहते हैं कि मिसेज मेहता के आने से पहलेउसे चाय पिला कर दफा कर दिया जाय जिससे मिसेज महता उसे न देख सके और यह अन्दाजा न लगा पाए

---

1. गिरिश रस्तोगी -"मोहन राकेश और उनके नाटक", पृ0 131

कि भोलानाथ परिवार के संबंधियों की आर्थिक हालत सस्ता है । अन्त में जब दीवानचन्द भोलानाथ से आर्थिक सहायता मांगता है, वह साफ इन्कार कर देता है और वहां से चला जाता है । दीवानचन्द भी वहां से निराश होकर चला जाता है । माधुरी भगवान को धन्यवाद देती है कि मिसेज मेहता के आने के पूर्व ही वह चला गया । लेकिन जब पम्मी उसे बताती है कि मिसेज मेहता ने मौसा जी को कोठी से बाहर जाते हुए देख लिया था और उनके बारे में पूछ रही थी तो माधुरी हताश भाव से अपना सिर पकड़ लेती है । लालिमा बार बार टूट कर माधुरी को जिस अनिष्ट का संकेत दे रही थी, वह अनिष्ट आखिर हो गयी । माधुरी के इस तनाव के साथ एकांकी समाप्त होता है कि "कितनी मनहूस छाया है इनकी ? यह छाया मेरे दिमाग से निकलती क्यों नहीं ? क्यों ये सब कुछ लेकर आते हैं ? क्यों इतना प्यार दिखाते हैं ?... ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस एकांकी में मोहन राकेश ने एक तथाकथित अभिजात्य परिवार की संवेदनहीनता औरअमानवीयता को गहरे स्तर पररेखांकित किया है । व्यक्ति जितना ही अमीर होता जाता है, मानवीयता और संवेदनशीलता में उतना ही गरीब होता जाता है । भोलानाथ का परिवार ऐसा ही है । स्थिति बदलने के साथ ही उनकी जीवन शैली और मनोवृत्ति भी बदल जाती है । खोखलापन और दिखावा उस परिवार के अंग हैं । माधुरी,मीरा, भोलानाथ आदि पात्र अवसरवादी भावनाशून्य एवं मृतात्मा हैं । माधुरी हीन भावना से ग्रस्त तनावग्रस्त एवं नर्वस है । उसके हाथ से बार बार प्याली टूटती है । यह टूटना उसके स्वभाव को अभिव्यक्त करने के साथ साथ दीवानचन्द जैसे सम्बन्धियों से सम्बन्ध तोड़ने की ओर भी संकेत है ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 69-70

दीवानचन्द के प्रति इनके व्यवहार को देखने से उनका असली चरित्र समझ में आ जाता है । मल्लिका में वे सब विशेषताएं हैं जो एक अमीर घर के नौकर में होती हैं । इस एकांकी में केवल दीवानचन्द ही ऐसा पात्र है, जिसमें मानवीयता और सहृदयता है । लेकिन वे इसी गुजरे हुए दिनों की घटना, मनहूस छाया, अनिष्ट का प्रतीक आदि समझते हैं ।

इस एकांकी के सम्वाद इतने सशक्त हैं कि पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं उघाड़ कर रख देते हैं । इन सम्वादों के माध्यम से जगह जगह इनके छिछलेपन और अहंकार का पता चलता है । पात्रानुकूल भाषा में अंग्रेजी वाक्यों का जगह जगह प्रयोग है । भाषा तथाकथित अभिजात्य परिवार का वातावरण निर्मित करने में काफी हद तक सफल है । निष्कर्षत: डा० रीता कुमार के शब्दों में हम कह सकते हैं -'अण्डे के छिलके एकांकी स्वातन्त्र्योत्तर भारत में क्रमश: आने वाले मूल्य विघटन को मूर्त करता है । यह एकांकी उसी पृष्ठभूमि पर तेजी से समाज में होने वाले सम्बन्धों केविघटन को मूर्त करता है । 'टूटती प्यालियां' टूटते मानवीय सम्बन्धों का सशक्त प्रतीक है । कुल मिलाकर यह एकांकी आधुनिकता की मृत चेतना को क्रूरता से उघाड़ने वाला व्यंग्य है ।'[1]

'बहुत बड़ा सवाल' के विषय में गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि - 'उपर्युक्त तीनों एकांकियों की तुलना में काफी आगे की रचना जैसा लगता है, अधिक सहज, स्वाभाविक और ज्यादा गहरी पैठ, बनावट और गठन की अनुभव का तीखापन ।'[2] नि:सन्देह यह बात सही है । यद्यपि यह एकांकी आकार में काफी विस्तृत है, फिर भी इसकी कथा बहुत संक्षिप्त

---

1. डा० रीता कुमार -'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में ', पृ० 324
2. गिरीश रस्तोगी : मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ० 132

है । उसमें मध्यवर्गीय बाबुओं की निष्क्रियता को बहुत ही व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । आज हमारे देश में नाना प्रकार की समस्याएं हैं । उन समस्याओं को हल करने के लिए मीटिंग्स होती हैं लेकिन वे मीटिंग्स कैसे परिचालित होती हैं, इसे 'बहुत बड़ा सवाल' पढ़कर सहज ही समझा जा सकता है । इस एकांकी में लो ग्रेड वर्कर्स की समस्याओं को लेकर एक मीटिंग होती है, जिसमें फालतू की बहसें होती हैं, एक दूसरे पर छींटाकशी की जाती है और अन्त में लोग चाय, सैनी, मूंगफली खा-पीकर चल देते हैं और ढेरा सारा कूड़ा कर्कट छोड़ जाते हैं । एकांकी का आरम्भ भी धूल झाड़ने से होता है और अन्त भी कूड़ा साफ करने से । राम भरोसे श्याम भरोसे को उठाता हुआ कहता है कि 'अब सीधा हो जा । बहुत कूड़ा कर गये हैं । साफ करना है ।'[1] यह कूड़ा वस्तुत: मध्य वर्गीय लोगों की निष्क्रियता, उनकी कुप्रवृत्तियों का कूड़ा है, जिसे राम भरोसे श्याम भरोसे जैसे निम्न मध्यवर्ग के लोग साफ करते हैं जो ठीक से साफ नहीं कर पाते ।

इस एकांकी में बारह पात्र हैं । रामभरोसे, श्याम भरोसे, शर्मा, कपूर, मनोरमा, सन्तोष, गुप्रीत, प्रेम प्रकाश, दीन दयाल, रमेश, मोहन, सत्यपाल । इन सब का अपना-अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है । साथ ही ये भिन्न प्रकार के वर्गों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं । ये पात्र परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं । इसमें परस्पर एकता का अभाव है । एकता का अभाव, इस मध्यवर्ग की निष्क्रियता रूप कुप्रवृत्तियाँ ही एकांकी का सबसे बड़ा सवाल हैं । यदि इस सवाल का हल निकल आए तो हमारी समस्याएं सहज ही हल हो सकती हैं ।

---

1. मोहन राकेश, अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 102

इस एकांकी के सम्वाद संक्षिप्त एवं सारगर्भित हैं । ऐसे सम्वाद अभिनय की दृष्टि से बहुत उपयुक्त होते हैं । क्योंकि पात्र इन्हें शीघ्र याद कर लेते हैं । सम्वादों के सहारे ही लेखक ने मध्यवर्ग के बीच समती कर रही जड़ता एवं स्वार्थपरता को उद्घाटित किया है । इनकी भाषा सरल एवं व्यंग्यात्मक है । व्यंग्य इस एकांकी की सम्पूर्ण संरचना में है। भाषा में अंग्रेजी के शब्दों के साथ साथ परस्ताव (प्रस्ताव), संशोदन (संशोधन) जैसे हिन्दी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है ।

`शायद` और `ह:` अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक पुस्तक में संकलित दो बीज नाटक हैं `शायद` बीज नाटक 19 फरवरी 1967 में `धर्म युग` में छपा था और ह: 13 अगस्त 1967 को । बीज नाटक पद से मोहन राकेश का क्या मतलब था, उसे उन्होंने कहीं भी स्पष्ट नहीं किया है । इन दोनों नाटकों को पढ़कर विद्वानों ने अपने अपने अनुसार बीज नाटक शब्द का अर्थ लगाया है । बीज नाटक शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए डा० गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि `समकालीन संत्रास को अपने लघु आवरण में समेटने की शक्ति ही मानो उनका बीज रूप है, जिसमें उसी को विस्तार देने की सम्भावनाएं निहित हैं, यानी एक ऐसी विधा जो बीज रूप में व्यक्तियों के सम्बन्धों या स्थितियों की करालता को रेखांकित भर कर दे, जिसे बाद में भरे-पूरे नाटक के रूप में विकसित किया जा सके ।`[1]

`शायद` आलोच्य पुस्तक का पहला बीज नाटक है । इसमें कथानक कुछ खास नहीं है । पूरा कथानक स्त्री और पुरुष नामक दो पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है । पुरुष हमेशा सोचता रहता है । उसे लगता है

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ० 133

है कि जब वह अकेला था तब भी उसके चारों तरफ ऊब की ऊब थी और आज जब उसके पास सब कुछ है, तब भी चारों ओर उदासी और शून्यता है । उसे पहले जिन चीजों से थोड़ी खुशी मिलती थी, अब उनसे वह भी नहीं मिलती । स्त्री भी अनमनी सी रहती है । उसके भीतर भी उदासी और खालीपन हैं । दोनों अपने अन्दर की इस उदासी और खालीपन को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । इसीलिए वे कभी सूरत जाने का कार्यक्रम बनाते हैं तो कभी फिल्म देखने का । कभी पहाड़ों पर जाने का तो कभी विदेश जाने का । अंतत: वे कहीं नहीं जाते और महसूस करते हैं कि सभी जगहें एक सी हैं । उन्हें कहीं भी किसी भी चीज में नयापन नहीं दिखाई देता । दोनों अपने को बहुत सेन्सिबिल समझते हैं, इसीलिए हमेशा सोचते रहते हैं कि उदास रहते हैं । दोनों की इस उदासी का कारण अपना मेच्योर होना लगता है । एक बात ध्यान देने योग्य है कि 'आधे अधूरे' के पुरुष में मोहन राकेश की छाया है । यह बात उनकी डायरी पढ़ने से भी स्पष्ट होता है । इस बीज नाटक की सांकेतिकता इसका वैशिष्ट्य है, इसीलिए यह हर परिवार के स्त्री-पुरुष की कहानी बन जाती है ।

सम्वाद इस बीज नाटक के प्राण हैं । सम्वादों के माध्यम से ही मानसिक तनावों को उभारा गया है । गिरीश रस्तोगी उसके सम्वादों के विषय में लिखती हैं कि - 'सम्वाद तीक्ष्ण हैं, लेकिन असम्बद्ध, अधूरे-अस्फुट । ये अधूरे वाक्य, टुकड़े बड़े सार्थक हैं । कहीं-कहीं असम्बद्ध वाक्य पात्रों के आज के मनुष्य के आपसी सरोकारों की समाप्ति का संकेत कर जाते हैं, तो कहीं आज के उलझे यथार्थ का, आदमी की उलझन और मजबूरी का । कहीं संवादों को दोहराया गया है और इसी युक्ति से जीवन की निस्सार पुनरावृत्ति का संकेत कर दिया गया है ।'[1]

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ0 136

दूसरा बीज नाटक है `हं:`। यह बीज नाटक जिन्दगी की वास्तविकता को और अधिक भयावहता के साथ, नग्न रूप में चित्रित करता है। इसमें एक रोगी पात्र - पपा की विवशता, लाचारी और मानसिक अनुभूतियों के साथ-साथ उसकी पत्नी ममा की घुटन भरी जिन्दगी को बड़ी मार्मिकता के साथ उभारा गया है। पूरा कथानक इन्हीं दो पात्रों को लेकर चलता है। हमारे परिवार और समाज में एक अपाहिज और रोगी व्यक्ति कितना लाचार और विवश होता है, इसे पपा के माध्यम से इस बीजनाटक में बहुत मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है। वह चारों तरफ से उपेक्षित है। बेटे-बेटियों-पड़ोसियों सगे-सम्बन्धियों की बात तो दूर, घर का नौकर, जमशेद तक उसे नहीं पूछता। उसका बेटा लन्दन से जब भी पत्र लिखता है, तभी पपा के `वेलफेयर होम` भेज देने की बात कहता है। लेकिन ममा उस पत्र को पपा को नहीं दिखाती क्योंकि उससे जो उसे और अधिक कष्ट होता था। एक मात्र ममा ही है जो पपा की देखभाल करती है। लेकिन कोई कितने दिनों तक ऐसी जिन्दगी जी सकता है। ममा भी इस घुटन भरी जिन्दगी से ऊब चुकी है। इसका पता उसकी झुंझलाहट, उसके क्रिया-कलापों और उसके संवादों से चलता है। जब वह कहती है -`तुम तो जैसे... आदमी नहीं हो तुम।` `मुझसे अब नहीं होता पपा... अब नहीं होता मुझसे।`[1] इस प्रकार पपा उपेक्षा और विवशता की जिन्दगी जीता हुआ हं:। हं:। करता रहता है। उसके इस हं में उपेक्षा और विवशता का यही गहरा अर्थ है। बीते हुए दिनों को याद करता हुआ वह अपने दु:ख को भुलाने और समय काटने की कोशिश करता रहताहै। इस प्रकार कथ्य की दृष्टि से गतिहीन होते हुए भी यह नाटक अपने प्रतिपाद्य को बहुत ही मार्मिकता के साथ चित्रित

---

1. मोहन राकेश -`अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक`, पृ0 137

करता है । लाता हे एकांकीकार मरणासन व्यक्ति के सिरहाने बैठा है और उसको तिल तिल मरते हुए देख रहा है । उस रोगी की एक एक गतिविधि और मानसिक ऊहापोह को रेखांकित करने में `हं: हं: ` बोधक शब्द के माध्यम से अभिव्यक्ति में लेखक बहुत सफल रहा है।

पपा और ममा हं: के मुख्य पात्र हैं । साथ में एक नौकर जमशेद है । इन सब के बीच हैं... और बीतता समय । किसी तरह से समय व्यतीत करना ही इन पात्रों के लिए सबसे बड़ा प्रश्न बन गया है । पपा भी बिस्तर पर पड़े-पड़े एक तरह से समय ही व्यतीत कर रहा है और ममा भी किसी तरह इस जिन्दगी को जी रही है । जमशेद तो यदि किसी काम के लिए जाता है, फिर जल्दी लौट कर वापस ही नहीं आता ।

`शायद` की तरह `हं:` में भी सम्वाद रचना काफी सशक्त है । ये संवाद पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व और उनकी ऊब, झुंझलाहट, लाचारी को व्यक्त करने में सक्षम हैं । डा० रीता कुमार ने ठीक ही लिखा है कि `कुल मिलाकर यह नाटक एक परिचित विशेष की अनुभूतियों को पूर्णतया व्यक्त करने में सक्षम संवादों के बल पर ही जीवित है ।`[1] भाषा भी परिस्थितियों की विषमता को उभारने में सक्षम है ।

`छतरियां ` अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` में संकलित अन्तिम रचना है । पार्श्व नाटक के रूप में मोहन राकेश द्वारा लिखा गया यह नाटक एक अभिनव प्रयोग है । कथ्य एवं शिल्प दोनों दृटियों में यह पार्श्व नाटक उनकी एकांकियों और बीज नाटकों से सर्वथा भिन्न है । वस्तुत: छतरियां हिन्दी नाट्य जगत में एक मौलिक और

---

1. डा० रीता कुमार, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में, पृ० 328

विशिष्ट प्रयोग हैं । यह कोई मूक नाटक नहीं है । इसमें अभिनेता की अभिनय क्षमता से कहीं अधिक महत्व नेपथ्य के पीछे से ही विभिन्न प्रकार की ध्वनियों, संकेतों, उक्तियों के माध्यम से स्थिति की सूचना दी जाती है । समाज में व्याप्त द्वन्द्व और संघर्ष इसी प्रकार मंच पर साकार किया जाता है ।

'छतरियां' आज के मनुष्य की उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक विडम्बनाओं के साथ प्रस्तुत करता है । व्यक्ति विडम्बनाओं-विषमताओं के दुष्चक्र में किस प्रकार उलझा है, इसकायथार्थ अंकन इस पार्श्व नाटक में है । नाटक की शुरुआत 'भारी मशीन के घड़घड़ाती सी सम्मिलित आवाज के साथ होती है । अन्धेरे रंगमंच पर कुछ लोग पैंच की तरह घूमते नजर आते हैं । यह व्यक्ति के सामाजिक जीवन की यांत्रिकता का प्रतीक है । युग का संकट, मूल्यों को लेकर उठते प्रश्न, विचारों की महामारी, इन सब को लेखक में बहुत ही कुशलता के साथ उद्घाटित किया है । एक आदमी को ठोकर मार कर अन्धेरे में धकेल दिया जाता है । यह आधुनिक जीवन की दिशाहीनता का प्रतीक है । जिसे हर आदमी पाने का प्रयास कर रहा है । इसलिए वह एक दूसरे को कुचलता हुआ आगे बढ़ जाता है । अब यह छतरी उसे प्राप्त हो जाती है, तब वह उसे अन्य लोगों से बचाकर अपने ही अधिकार में रखना चाहता है । ऐसे में वह मनुष्यता को भी भूल जाता है । डा० रीता कुमार ने ठीक ही लिखा है कि -'वस्तुत: इस नाटक परिदृश्य योजना में निर्देशित रंग-बिरंगी छतरियां मनुष्य की उन नाना छलनाओं का प्रतीक हैं, जिनको पाने की तृष्णा में मनुष्य आजीवन भटकता है, पर उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता । ये छलनाएं आज प्रत्येक क्षेत्र - राजनीति, अध्यात्म, समाज, परिवार और साहित्य में व्याप्त हैं ।'[1]

---

1. डा० रीता कुमार, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक, मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में, पृ० 329

नेपथ्य से आने वाली ध्वनियां, संकटग्रस्त पारिवेश में फंसे व्यक्ति की छटपटाहट है । नाटक के उत्तरार्द्ध में व्यक्तियों का अपनी-अपनी छतरी के साथ नाचना, कुछ न समझ आने वाले राष्ट्रीय प्रसारण को गम्भीरता से सुनना, छतरियों की मारधाड़, अपने स्वाभिमान का परित्याग कर पेट के बल रेंगना, ये तथ्य समाज में व्याप्त खोखलेपन, व्यक्ति की चाटुकारिता और उसकी अवसरवादिता की कटु यथार्थ के साथ प्रस्तुत करते हैं । कहना न होगा कि इस पार्श्व नाटक के माध्यम से मोहन राकेश ने अत्यन्त कुशलता के साथ युग सत्य को मंत किया है ।

अन्य नाटकों, एकांकियों की तरह इस पार्श्व नाटक में पात्रों का कोई निश्चित विधान नहीं है । पार्श्व ध्वनि और रंग संकेतों, संवादों आदि के माध्यम से ही प्रतिपाद्य को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है । इसमें भाषा का बहुत ही कलात्मक प्रयोग देखने को मिलता है । परि-स्थितियों के अनुसार भाषा ढलती गई है । इसकी भाषिक संरचना का विश्लेषण करती हुई गिरीशरस्तोगी लिखती हैं कि -"भाषा पर कड़ा अधिकार इसमें मिलेगा । जैसी परिस्थिति की आवश्यकता है, भाषा वैसी ही ढल गई है । बिना किसी संकोच और अनिश्चय या सन्देह के पूरे आत्म विश्वास के साथ सिद्धान्त वाक्यों में संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया है जो निश्चय ही स्वाभाविक और आवश्यक है, तो अलग परि-स्थितियमें वास्तविकता और विसंगति से जूझने में लगातार दूर तक भद्दी गोलियों का प्रयोग भी किया है, जो नाटक की स्थिति और लय से, समकालीनता से इस हद तक जुड़ा हुआ है कि अश्लीलता जैसे प्रश्नों की कोई गुंजाइश नहीं है । दूसरी ओर राजनीतिज्ञों की पुरानी पीढ़ी उर्दू भरी तकरीर करती है और उसकी लय सिद्धान्त वाक्यों की लय से अलग है । लड़ाई , कीर्तन, पागलपन, नारें, जुलूस, सब की भाषा की अपनी अपनी लय है, जो विविधता भी लाती है, अर्थ भी पैदा करती है ।

नाट्य भाषा इसी लचीलेपन और समर्थ की मांग करती है । राकेश की भाषा के प्रति सतर्कता और चिंतन का यह नाटक प्रमाण है ।"[1]

इस प्रकार 'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' में समाज एवं व्यक्ति के विविध पक्षों एवं समस्याओं का सजीव चित्रण किया गया है । इस उप-अध्याय में आलोच्य पुस्तक में संकलित एकांकियों, बीज नाटकों, पार्श्व नाटक का परिचयात्मक विवेचन ही किया गया है, इस लिए अधिक विस्तार में न जाकरउनकी संक्षिप्त रूपरेखा ही दी गई है जिसका विस्तृत विश्लेषण आगे के अध्याय में किया गया है ।

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ० 144

अध्याय तीन

`अण्डे के छिलके` संग्रह में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप

(क) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

(ख) सामाजिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

(ग) राजनीतिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

(घ) आर्थिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

(ङ) धार्मिक जीवन सम्बन्धीद्वन्द्व

(क) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है।जो साहित्य अपने युग की परिस्थितियों, समस्याओं एवं समसामयिक घटनाओं को ध्यान में रखकर रचा जाता है तथा जो समसामयिक मांगों को पूरा करता है, सच्चे अर्थों में वही साहित्य कहलाता है । और समाज में स्थायी महत्व रखता है ।

आधुनिक एकांकीकारों ने इस बात का ध्यान रखा, इसी का परिणाम है कि आज एकांकी आधुनिकतम विधा होते हुए भी अपनी अलग पहचान एवं महत्व बनाए हुए है ।

आधुनिक एकांकीकारों ने अपने एकांकियों का विषय मुख्य रूप से सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थितियों एवं जीवन की विभिन्न समस्याओं से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्य द्वन्द्व को ही बनाया है । यह संघर्ष - पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कई रूपों में देखने को मिलता है । सामाजिक द्वन्द्वों में पति-पत्नी के बीच द्वन्द्व, दरार, निराशा, पर-पुरुष से सम्बन्ध, अविश्वास., संबंध-विच्छेद, दहेज की समस्या, आधुनिक शिक्षित स्त्री-पुरुष पर पाश्चात्य प्रभाव, मानसिक विकृति, भोग विलास, काम वासना, स्त्री की स्वच्छंद प्रवृत्ति, व्यक्ति का संघर्ष, धर्म के लिए संघर्ष, साम्प्रदायिकता, आर्थिक संघर्ष एवं आर्थिक शोषण, वर्ग संघर्ष आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण आता है । अंजुलता गौड़ ने सामाजिक द्वन्द्व के विषय में इस प्रकार स्पष्ट किया है -"आज का एकांकीकार स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धों को लेकर उसके पारिपरिक आकर्षण, खिंचाव, सम्बन्ध स्थापन, प्रतिक्रिया, मिलन, विरक्ति, कड़ाहट, विच्छेद, पुन: आकर्षण, नये सम्बन्धों का जुड़ना पुराने सम्बन्धों का टूटना, नये पुराने के बीच आकर्षण-विकर्षण आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक तटस्थता के साथ कर रहा है ।... मध्यवर्ग

और निम्न मध्यवर्ग में दोनों ही आज सर्वाधिक घुटन का अनुभव कर रहे हैं । समाज के ये दोनों वर्ग एक ओर शिक्षित होने के कारण सर्वाधिक संवेदनशील है, दूसरी ओर आर्थिक दबाव भी सर्वाधिक इन्हीं को टूटने के लिए विवश कर रहा है ।'[1]

एकांकियों का विषय क्षेत्र काफी व्यापक है । उसमें ऐतिहासिक एवं पौराणिक घटनाओं एवं प्रसंगों से लेकर आज के दैनिक जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी कठिनाईओं घटनाओं तक को विषय बनाया गया है । इस प्रकार डा० रमेश तिवारी ने एकांकी विधान का महत्व बताते हुए लिखा है --' हिन्दी एकांकी में आज की जिन्दगी की दुरूहता, क्रूरता, तिक्तता और कुरूपता जिस यथार्थ के साथ व्यक्त हुई है, उस यथार्थता के साथ अन्य किसी भी साहित्य विधा में नहीं व्यक्त हुई है । इस दृष्टि से एकांकी विधा आज सबसे अधिक हमारे जीवन तथा हमारी दुनिया के करीब पड़ती है और हम उसमें अपना सुख-दुख , आशा-निराशा, दुख-दर्द अधिक सभ्यता के साथ तथा निकटता से देख सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं । एकांकी की सांस हमारी सांसों के इतना करीब है कि हम उसे अपनी ही सांसों के रूप में महसूस कर सकते हैं ।'[2]

आलोच्य एकांकी संग्रह के सभी एकांकी 'अण्डे के छिलके,' 'प्यालियां टूटती हैं, 'सिपाही की मां ','बहुत बड़ा सवाल', बीज नाटक 'शायद' और 'हं: ' पार्श्व नाटक 'क्यारियां ' में समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं से उत्पन्न व्यक्ति के द्वन्द्वों का चित्रण है ।

जिस तरह उन्होंने अपने उपन्यास, कहानी, नाटकों में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को गम्भीरता के साथ व्यक्त किया है, उसी

---

1. अंजुलता गौड़ - हिन्दी एकांकी में जीवन-मूल्य, पृ041
2. डा० रमेश तिवारी - हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विश्लेषण, पृ० 38

प्रकार लघु नाटक या एकांकियों में भी उन्होंने सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न आज के व्यक्ति की मनःस्थिति या मानसिक द्वन्द्व एवं संघर्षों को गम्भीरता से चित्रित किया है ।

इन सामाजिक विसंगतियों, रूढ़ियों, मानवीय सम्बन्धों के टूटन, अस्तित्व की रक्षा के लिए द्वन्द्व, या संघर्ष को उस समय के पारिवारिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी पहलुओं में देखा जा सकता है । आज भी वे संघर्ष हमारे समाज में ज्यों के त्यों व्याप्त हैं । समाज में व्याप्त इन द्वन्द्वों के कई रूप स्पष्ट रूप से इन के एकांकियों में नजर आते हैं, जिनका विवेचन करना ही हमारे इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है ।

(1) संयुक्त परिवार की समस्या - आलोच्य एकांकी संग्रह में आधुनिक समय के संयुक्त परिवारों की विकटताओं से सम्बन्धित द्वन्द्वों को दिखाया है । `अण्डे के छिलके ` एकांकी में परिवार संयुक्त न होकर एकल परिवार है जो बाहर से भरा-पूरा लगता है, जबकि भीतरी दशा यह है कि सभी पात्र खोखले हैं । परिवारका मतलब यह होता है कि सब मिल-जुलकर रहें, मिल जुल कर सायें आपस में किसी प्रकार का दुराव न हो । परिवार का मतलब यह होता है कि सब मिल-जुलकर रहें । किसी प्रकार का दुराव न हो । परिवार का प्रौढ़ व्यक्ति ही सर्वोच्च हो और उसके अनुसार ही परिवार के बाकी सदस्य आचरण करें । परन्तु हम इसमें देखते हैं कि मां से, बड़े भाई से बातें छिपाने की कोशिश की जाती है । इसी लुकाव-छिपाव की कोशिश में पात्र द्वन्द्वग्रस्त रहते हैं और उसी ऊहापोह को अन्त तक बनाए रखते हैं ।

(2) बनावटी जीवन जीने की इच्छा - इस एकांकी के माध्यम से आधुनिक युग के व्यक्तियों के बनावटी जीवन पर व्यंग्य किया गया है । इसमें श्याम आधुनिक जीवन जीने की इच्छा से अम्मा और परिवार के अन्य सदस्यों से छिपाकर अण्डे खाता है और गोपाल भी सबसे छिप कर अण्डे और सिगरेट का सेवन करता है । और घर की बड़ी

बहू - राधा अम्मा और बाकी परिवार जनों से छिप कर चन्द्रकान्ता सन्तति पढ़ती है । वे लोग आधुनिक बनना तो चाहते हैं पर परम्परा-वादी अम्मा से डरते भी हैं । अत: वे सब एक ऐसे अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति से गुजरते हैं, जिससे लगता है कि परम्पराएं ध्वस्त होने वाली हैं ।

इस बनावटी जीवन का खुलासा `प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी में देखने को मिलता है । इस एकांकी के पात्र माधुरी, मीरा, भोलानाथ सभी दिखावे को ही सुखी सम्पन्न जीवन जीना समझते हैं । इसके लिए अपने गरीब रिश्तेदार दीवानचन्द को भी तिरस्कृत करके बरसों का रिश्ता तोड़ने से नहीं हिचकते । माधुरी के मन में मानसिक द्वन्द्व चलता है । उसके हाथ से बार बार प्याली टूटती है और प्याली का टूटना प्रतीक है । दीवानचन्द के साथ के रिश्ते को लेकर उसके मन की स्थिति का । इस सम्बन्ध में मंजुला अवतार का कथन है --`यहां प्यालियों का टूटना एक खास मायने रखता है, वास्तव में उनका टूटना माधुरी के मन की टूटन और बिखरन को ही व्यक्त करता है । एक प्याली टूटती है तो लगता है कि माधुरी के मन की एक परत चटख गयी है ।... आज आडम्बर और दिखावे से सम्बन्धित कृत्रिम मूल्यों का विकास हो रहा है। हम कृत्रिमता और आडम्बर के प्रतीक बन कर रह गये हैं । इसी से हम बाहर से भरे-पूरे होकर भी भीतर से खाली और टूटे हुए हैं ।`[1]

माधुरी को लगता है कि दीवानचन्द के साथ रिश्ता जबरदस्ती निभाना पड़ रहा है । अब दीवानचन्द के प्रेम, त्याग, स्नेह का इन आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न अभिजातीय वर्ग के लिए कोई महत्व नहीं रखता ।

---

1. मंजुला अवतार - मोहन राकेश के नाटकों में अजनबीपन की अवधारणा, पृ0 148

इसमें व्यक्ति मन का द्वन्द्व भी दिखाया गया है । ये बंटवारे का दर्द सीने में छिपाये है । दीवानचन्द जैसे व्यक्ति अपना सब कुछ इस बंटवारे में खो चुके हैं, पर मानवीयता नहीं । इसलिए भौलानाथ के पूरे परिवार को हवाई जहाज में लाते हैं और निरन्तर उन्हें अपना ही परिवार मानते हैं, पर यह परिवार जैसे जैसे आर्थिक दृष्टि से सक्षम होता जाता है, वैसे-वैसे दीवानचन्द की गरीबी के कारण उससे पीछा छुड़ाना चाहते हैं । झूठे अहम् का द्वन्द्व उनके मन में निरन्तर चलता रहता है । इसी कारण उन्हें दीवानचन्द द्वारा लड़की को पालने-पोषने के पीछे जो अरमान हैं, वे व्यर्थ लगते हैं ।

(3) विभिन्न वर्गों का चित्रण - अण्डे के छिलके संग्रह में एक एकांकीकार ने निम्न वर्ग, मध्य वर्ग एवं उच्च वर्ग का चित्रण किया है तथा हर वर्ग के लोगों को अपनी स्थिति में असन्तुष्ट और विभिन्न समस्याओं के कारण तनावग्रस्त और द्वन्द्वमय रहते दिखाया है।

`सिपाही की मां ` एकांकी में निम्न मध्यवर्ग का चित्रण हुआ है जिसमें मुख्य रूप से सिपाही की मां बिशनी और मुन्नी की सामाजिक, मानसिक दशा की दयनीय स्थिति का ही चित्रण है । इसमें बिशनी के माध्यम से निम्न वर्ग के व्यक्तियों की सस्ता हालत को दिखाया है जो अपनी गरीबी दूर करने के लिए तथा आर्थिक मजबूरी से अपने इकलौटे बेटे को युद्ध की विभीषिका में भेजने को मजबूर है । बिशनी बेटे को युद्ध में तो भेज देती है, परन्तु दिन रात उसकी चिन्ता करती रहती है । प्रतिदिन उसकी चिट्ठी आने का इन्तजार रहती है और वह तनावग्रस्त स्थिति में जीती है ।

मां बिशनी दिन रात चिन्ताग्रस्त रहने के कारण स्वप्न में भी युद्ध का ही दृश्य देखती है जिसमें उसका बेटा घायल है और उसका कोई दुश्मन उसको मारने आ रहा है । इसलिए अपना बेटा को दूसरे

सिपाही से बचाने की कोशिश करती है, जो उसकी यह द्वन्द्वग्रस्त मन:स्थिति अवचेतन में भी चल रही है ।

इसमें कुन्ती और दीनू कुम्हार और दूसरे सिपाही की परिवार भी निम्न वर्ग से ही संबंधित है । इसमें यही द्वन्द्व है कि निम्नवर्गीय लोगों कीसोच भी निम्न ही रहती है ।

बीज नाटक `शायद` और `हं:` भी मध्यवर्ग से ही संबंधित है । इसलिए शायद के स्त्री-पुरुष जीवन की ऊब को दूर करने के लिए कार्य-क्रम बनाते हैं परन्तुर आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण अनिर्णय की स्थिति में रहते हैं । इसलिए द्वन्द्वग्रस्त हैं । `हं:` बीजनाटक में बुढ़ापे एवं रोग से पीड़ित पपा की दयनीय स्थिति और ममा की असहाय स्थिति का चित्रण है । दोनों पति-पत्नी-पपा -ममा आर्थिक तंगी की हालत से गुजरते हैं । पर उनके बेटों को ममा-पपा से कोई मतलब नहीं । बूढ़े मां-बाप को वे बोझ ही लगते हैं । इसलिए उनके बीच में द्वन्द्व चलता रहता है ।

`प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी में उच्च मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है । उसमें मीरा, माधुरी, भोलानाथ, सभी पात्र बाह्याडम्बर एवं भौतिक सुख-सुविधा जुटाने के लिए तनावग्रस्त है, यह स्थिति माधुरी में दिखाई देती है । वह अपने जीजाजी को गरीब होने के कारण ठुकरा देती है । वह वह बीजाजी का आना ही अशुभ समझती है[1] । माधुरी को दीवानचन्द से घृणा है । वह कहती है --`न जाने कैसा ? इन्हें देखकर एक घिनौनी-सी सिहरन होती है ।`

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक पृ० 55

यही है आज के उच्च वर्ग की विडम्बना । गरीब होने के कारण वह माधुरी जैसे लोगों के लिए घृणा का पात्र बन जाने को मजबूर है । एकांकीकार ने दीवानचन्द और माधुरी के परिवार के माध्यम से अभिजातीय वर्ग एवं निम्न वर्ग के बीच के द्वन्द्व को दिखाया है जिसमें माधुरी जैसे उच्च वर्ग के लोगों को निम्न वर्ग के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, उठना-बैठना सबसे घृणा है ।

(4) पति-पत्नी सम्बन्धों में दरार और द्वन्द्व - राकेश ने अपनी अधिकांश रचनाओं में पति-पत्नी के बीच संघर्ष एवं आपसी झगड़े से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व को दिखाया है । आलोच्य पुस्तक के बीज नाटक `शायद` और `हं:` में भी पति-पत्नी के बीच दरार एवं द्वन्द्व को दिखाना ही एकांकीकार का उद्देश्य है । `शायद` के स्त्री-पुरुष अपने जीवन की ऊब, निराशा, उदासी, निष्क्रियता एवं खालीपन को भरने के लिए कोशिश करते रहते हैं परन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं निकलता । दोनों पति-पत्नी न होकर स्त्री-पुरुष बन कर रह गये हैं । उनके आपसी बातचीत में भी तालमेल नहीं है जिससे स्वत: असहयोग का बोध उभर आता है ।

पुरुष - सूरत... अगले हफ्ते नहीं... वहां जाना होगा, वो बाद में देखूंगा ।

स्त्री - तुम्हारी यह बहुत खराब आदत है ।

पुरुष - क्या आदत है ?

स्त्री - पेन कोट की जेब में रख लो - नहीं तो फिर भूल जाओगे और सुबह दफ्तर में जाकर... ।`[1]

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 106-107

'शायद' की स्त्री 'छिलके नीचे मत डालो' कहकर टूटते हुए रिश्तों को और अलगाव को संभालने की कोशिश करती है परन्तु उस की सारी कोशिशें मुंगफली के छिलको की तरह छिटकती ही जाती हैं। दूसरी तरफ पुरुष भी दरार को भरवाकर दोनों की दूरी को दूर करने की सोचता है। इसलिए वह कहता है --

'पुरुष - वह दरार भरवा दी है तुमने ?... बिस्तर के पास की दीवार की ?

स्त्री - (कुछ तल्ख होकर) देखते ही हो... मेरे पास फुरसत कहां रहती है दिन-भर ?'[1]

यह अलगाव, ऊब, निराशा, केवल नाटक के पात्रों की ही नहीं, बल्कि एकांकीकार के स्वयं के जीवन की भी है और आधुनिक यांत्रिक युग के स्त्री-पुरुष के बीच के सम्बन्धों के मानसिक द्वन्द्व का भी है।

दूसरा बीजनाटक 'हं:' ममा पपा की स्थिति भी 'शायद' के स्त्री-पुरुष की स्थिति से मिलती जुलती है। 'हं:' की ममा के व्यवहार में अब अन्तर आ गया है। ममा के लिए पपा कभी डार्लिंग हुआ करता था। अब मात्र आदमी रह गया है। ममा कहती है --

'इसीलिए मैं इस आदमी को एक मिनट के लिए भी अकेला छोड़कर नहीं जाती। अगर कहीं मुझे घण्टा-दो-घण्टे के लिए जाना पड़ जाए घर से, तो पता नहीं यह क्या कहर ढा दे उस बीच... ।'[2]

इतना ही नहीं ममा अब पति और नौकर, में कोई अन्तर नहीं देखती।

ममा - 'जैसा मालिक है इस घर का, वैसा ही नौकर भी है।'[3]
'तुम तो जैसे... आदमी नहीं हो तुम।'[4]

----

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 112
2. वही, पृ0 त 126 3. वही, पृ0 129, 4. वही, पृ0 137

ममा टूटे हुए प्यालियों के टुकड़े को एक जगह रखती है जिससे एक दिन सारे ड्यूराफिक्स से जोड़ देगी । पर यह जोड़ी वाली प्याली कब तक साथ दे सकती है । ऊपर से हर समय जुड़ाव तथा टूटन का अहसास लगातार होता रहता है ।ममा, पपा को घर से बाहर फेंक तो नहीं सकती, इसलिए मजबूरी में निभाए ही जा रही है । इस सन्दर्भ में लक्ष्मणदत्त गौतम लिखते हैं -- अब तो हालत यह है कि पपा आदमी न रहकर एक पुरानी प्याली का पर्याय बन जाते हैं, जिसको रखने के लिए मेज (घर) पर कोई जगह नहीं रह गई है । अत: वह टूट जाती है मगर सामाजिक विडम्बना यह है कि उसे घर से बाहर फेंका भी नहीं जा सकता, ड्यूराफिक्स से जोड़कर उसे निभाया जा रहा है ।`[1]

इस प्रकार इन बीजनाटकों के माध्यम से एकांकीकार ने आज के यांत्रिक एवं मशीनी युग में पति पत्नी के रिश्ते को, जो एक मात्र सामाजिक विडम्बना बन कर रह गया है, मजबूरी को दिखाया है ।

(4) व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा सम्बन्धी द्वन्द्व

अण्डे के छिलके संग्रह की रचनाओं में व्यक्ति के अस्तित्व का चित्रण भी है । लेकिन व्यक्ति का अस्तित्व का यह संकट पार्श्व नाटक `छतरियां` में सर्वाधिक सशक्त रूप से उभरा है । `छतरियां` नाटक का मुख्य उद्देश्य ही व्यक्ति के अस्तित्व संकट को दिखाना है । आज प्रत्येक व्यक्ति इन रंग-बिरंगी छतरियों के पीछे दौड़ रहा है । व्यक्ति मात्र भीड़ बन कर रह गया है । वह केवल `कठपुतली` बनने को मजबूर है ।

इस भरतवाक्य के द्वारा एकांकीकार ने व्यक्ति के अपने अस्तित्व संकट को और भी उजागर कर दिखाया है ।

---

1. लक्ष्मणदत्त गौतम (सं0 सुन्दरलाल कथूरिया) - `नाटककार मोहन राकेश`, पृ0 109

- भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं ।
- कुछ भी नहीं ।
- जिज्ञासाएं उठती हैं बार-बार
- कब तक, कब तक, कब तक इस तरह ?

+ +

- कैसे जीऊं, कब तक जीऊं,
- अनायास उगे कुकुरमुत्ते-सा ?
- पहचान मेरी कोई भी नहीं आज तक ।'[1]

इन सम्बन्धों के द्वन्द्व को स्पष्ट करते हुए तिलकराज शर्मा कहते हैं --'राजनीतिक क़तरियां सवालों के जवाब के नाम पर वास्तव में आज के उकताए व्यक्तित्व को ही निगल कर इसे अस्तित्वहीन बना देना चाहती हैं । उन्होंने व्यक्ति से उसकी अस्मिता, उसके भाव और उन्हें व्यक्त कर पानेवाली भाषा तो छीन ही ली है, उसके जीवन को नितान्त बौदा काहिल बनाकर भी रख दिया है ।यानी कि मनुष्य मात्र 'कठ-पुतली' बनकर नाचने को विवश है । बरसाती कुकुरमुत्ते की तरह ये क़तरियां सहसा निकल कर, तनती जा रही हैं और सारे अहसास उनकी एकतानता में दब-घुट कर निरर्थक बन जाने को एकदम विवश होकर रह गये हैं ।'[2]

व्यक्ति के अस्तित्व का प्रश्न केवल एकांकी व नाटकों के पात्र के अस्तित्व का ही प्रश्न नहीं, बल्कि आम जनता का प्रश्न बन गया है । आज व्यक्ति सत्ताधारियों के चंगुल में फंसे अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है ।इसी अस्तित्व की रक्षा और अपनी पहचान के लिए व्यक्ति द्वन्द्वग्रस्त है ।

---

1. मोहन राकेश -'अण्डे के छिलके,अन्य एकांकी तथा बीज नाटक',पृ0160
2. तिलकराज शर्मा - 'अपने नाटकों के दायरे में : मोहन राकेश', पृ0 201

(ख) सामाजिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

राकेश की अधिकांश रचनाएं सामाजिक जीवन से ही संबंधित हैं। उनके कहानी, उपन्यास, नाटक हों या एकांकी, एक दो रचनाओं को छोड़ कर बाकी सामाजिक जीवन की समस्याओं का ही यथार्थ चित्रण करती है। अत: इसमें एकांकी भी अपवाद नहीं है। आलोच्य एकांकी संग्रह में संगृहीत एकांकी भी प्राय: सामाजिक जीवन से ही सम्बन्धित है। अत: जहां विषय सामाजिक जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित हो, वहां किसी-न-किसी प्रकार द्वन्द्व संघर्ष या तनाव होना स्वाभाविक ही है। अत: सामाजिक जीवन से संबंधित द्वन्द्वों के भिन्न रूपों में देख सकते हैं।

(1) दो पीढ़ियों का संघर्ष - आलोच्य एकांकी संग्रह के कुछ एकांकियों एवं बीज नाटकों में पीढ़ियों का संघर्ष या द्वन्द्व देखने को मिलता है। 'अण्डे के छिलके' नामक एकांकी में दो पीढ़ियों के बीच द्वन्द्व ग्रस्त स्थिति को दर्शाया गया है। पुरानी पीढ़ी में प्राचीन संस्कार एवं आदर्श मर्यादा की वाहिका के रूप में उसकी वृद्धा मां - यमुना है और आधुनिक पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में और नये आदर्शों में विश्वास रखनेवाली नयी पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में उनके बहुएं-बेटे। दोनों पीढ़ियों की विचार-धारा में भिन्नता के कारण द्वन्द्व संघर्ष चलता है। पुराने संस्कार वाली रामायणी संस्कृति में जीने वाली मां के लिए अण्डा खाना तो दूर की बात है, यहां तक कि उसका नाम लेना भी पाप समझती है। जबकि नयी पीढ़ी वाले बहू-बेटे आधुनिक संस्कार एवं नयी परम्परानुसार जीने में विश्वास रखते हैं। इसमें राधा, घर की बड़ी बहू पुराने संस्कार एवं मर्यादा-आदर्शों के प्रति आस्था रखती है और घर में समय के बदलते स्वरूप नये संस्कारों एवं विचारों को भी स्वीकार करती है। वह बीना जो घर की छोटी बहू है, से कहती है --

'कोई खराब बात चाहे न हो, मगर माजी देखेंगी वो क्या सोचेंगी कि रामायण नहीं, महाभारत नहीं, दिन भर बैठकर, ऐसे किस्से ही पढ़ा करती है - तुम जानो इस घर में ये सब बढ़ेंगे तो जान नहीं निकाल दी जायेगी ।'[1]

इसीलिए वह इस दोहरे लबादे वाली जीवन पद्धति निभाने केलिए जो तनाव झेल रही है, वही द्वन्द्व समाज के और भी व्यक्ति झेलने को मजबूर हैं । इसी कारण संयुक्त परिवार की स्थिति डावांडोल है। नित्यप्रति की क्रियाओं में भी किसी 'लौजिक' के न होने पर भी उन सब को मानने के लिए मजबूर है ।

इधर उसके बेटे भी अम्मा से छिपकर अण्डा खाते हैं और लुक-छिप कर अपने अपने कमरे में अण्डे का आमलेट या हलुआ बनाते हैं ।

मध्यवर्गीय परिवार की यही नियति है कि वे न तो खुल कर जीने की हिम्मत करते हैं और न ही अपनी आदत को छोड़ पाते हैं । इसलिए आज अधिकतर मध्यवर्गीय परिवार दोगलेपन का व्यवहार करने को मजबूर है । इसी कारण से सभी पात्र वीना को छोड़कर, तनावग्रस्त रहते हैं ।

दूसरी तरफ अम्मा भले ही सामने कुछ न कहती हो, परन्तु वह आज के नये संस्कारों एवं आदर्शों के प्रति मन में शंकित है, इसलिए वह अपने बच्चों पर आधुनिक वातावरण में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रूप से जीने के पक्ष में नहीं है । वह आधुनिक संस्कारों एवं आदर्शों के प्रति मन की शंका के कारण ही बच्चों पर अंकुश रखती है, जिससे बच्चे अम्मा से डरते हैं ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 14

इसीलिए इसी आशंका से अम्मा के मन में द्वन्द्व चलता है । 'प्यालियां टूटती हैं' एकांकी में भी दो लगने वाली पीढ़ियों के बीच द्वन्द्व देखने को मिलता है । इस एकांकी में माधुरी मीरा और भोलानाथ को नयी पीढ़ी और दीवानचन्द को पुरानी पीढ़ी मान सकते हैं । दीवानचन्द पुराने विचारों और आदर्शों से विश्वास रखनेवाले स्नेहिल दयालु किस्म के आदमी हैं । विभाजन के समय तक अपना परिवार था । अब कोई नहीं, केवल रिश्ते के नाम पर माधुरी, मीरा और उनका परिवार रह गया है । अत: वह मीरा-माधुरी को बहुत प्यार और विश्वास करता है । खास तौर से पम्मी को अपनी बेटी शुक्ला की तरह प्यार करता है । जो विभाजन के समय पाकिस्तान में रह गयी है ।

इधर, दूसरी तरफ मीरा, माधुरी, भोलानाथ आधुनिक युग के नये संस्कार एवं आदर्शों में विश्वास करने वाले हैं । यानी विभाजन में वे अपने संस्कार और परम्पराएं भी छोड़ आये हैं । अत: उनके लिए रिश्तों-नातों का कोई महत्व नहीं रहा । दीवानचन्द की भावनाएं इन लोगों की समझ में नहीं आतीं और दीवानचन्द को तब झटका लगता है जब अपने मेहमानों के सामने दीवानचन्द के रहने पर, शर्म महसूस की जा रही है । इसलिए इसको दूसरा दरवाजा दिखा दिया जाता है । दीवानचन्द जब माधुरी के घर से निकलने के लिए बायीं ओर के दरवाजे की तरफ जाने लगता है तो माधुरी कहने लगती है --'इधर से चले जाइये, जीजाजी, दूसरे दरवाजे से... ।'[1] यहां तक कि पम्मी जिसे वह अपनी लड़की के समान प्यार करता है ,सदैव उसके लिए कुछ न कुछ लाता है, वह भी दीवानचन्द के वात्सल्य को पसन्द नहीं करती । वह भी द्वन्द्वग्रस्त है कि पिता समान इस व्यक्ति को अपने जिन्दगी से कैसे हटाएं ।

---

1. मोहन राकेश : अण्डे के छिलके,अन्य एकांकी तथा बीजनाटक, पृ0 67

पीढ़ियों का द्वन्द्व इस एकांकी के पात्र का द्वन्द्व ही नहीं, बल्कि दीवानचन्द जैसे लोग जो पुराने विचार, मान-मर्यादा एवं आदर्श एवं पुराने संस्कारों में विश्वास रखने वाले की तनावग्रस्त स्थिति का चित्रण करता है ।

इनके एकांकियों में ही नहीं, इनके बीजनाटक `हः` में भी पीढ़ियों का द्वन्द्व देखने को मिलता है । `हः` बीज नाटक के माध्यम से एकांकीकार यह दिखाना चाहता है कि नयी-पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच बहुत लम्बा फासला एवं गहरी खाई उत्पन्न हो चुकी है । इसमें पपा-ममा पुरानी पीढ़ी के प्रतीक हैं और अपने बच्चों से अपेक्षा रखते हैं कि वे बुढ़ापे में उनका सहारा बनेंगे, जबकि उसके बहू-बेटे-बेटियां नयी पीढ़ी के प्रतीक हैं जिन्हें ममा-पपा से कोई लगाव, सहानुभूति एवं दया-ममता नहीं है । वे ममा-पपा को एक बोझ समझते हैं ।ममा का यह कथन उसके मन की पीड़ा एवं दर्द को दर्शाता है । `महीने भर से किसी नेखबर भी नहीं पूछी। कहने को तो सगा बेटा है, सगी बेटियां हैं ।`[1]

पुरानी पीढ़ी वाले, पुराने विचारधारा, संस्कार, मर्यादा-आदर्श में विश्वास रखनेवाले लोग तनावग्रस्त रहते हैं कि उसके बच्चे ध्यान नहीं दे रहे हैं और आधुनिक विचारधारा वाले की विडम्बना यह है कि वह किसी के कहने पर नहीं, स्वयं ही पुराने संस्कारों को छोड़ देना अपनी शान समझते हैं । इसलिए दोनों पीढ़ियों को एक दूसरे को न समझ पाने के कारण मानसिक द्वन्द्व चलता है ।

(2) दहेज प्रथा सम्बन्धी द्वन्द्व - आलोच्य एकांकी संग्रह के माध्यम से एकांकीकार ने आज के सामाजिक विडम्बना एवं विसंगतियों को दिखाया

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 129

है । आज समाज में पुराने आदर्श-मर्यादा परम्पराएं टूटते जा रहे हैं, परन्तु आज भी कुछ सामाजिक रूढ़ि एवं परम्परा में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता । समाज में अपना आतंक बनाए हुए है । जैसे कि दहेज प्रथा ।

इस एकांकी में सिपाही की मां बिशनी इसी सामाजिक दायित्व को एवं रीति-रिवाजों को पूरा करने के लिए ही मानक को युद्ध की विभीषिका में भेजने को मजबूर है जिससे बेटी मुन्नी की शादी करा सके । परन्तु वह युद्ध की समस्याओं से विचलित रहती है । ऐसे कठिन समय में आस-पड़ोस वाले भी सहानुभूति एवं सहयोग करने की बजाय अपने सुझावों द्वारा घाव पर नमक छिड़कने का काम ही करते हैं । पड़ोसन कुन्ती आकर बिशनी से मुन्नी की शादी की चर्चा करती है --

'तूने अभी इसके लिए कोई घर-वर नहीं देखा ?'[1]

बिशनी - 'वर-घर देखकर ही क्या करना है कुन्ती ?... तुझे तो पता ही है, आजकल लोगों के हाथ कितने बढ़े हुए हैं ।'[2] इन शब्दों में बिशनी की कितनी मजबूरी एवं मर्म वेदना छिपी हुई है ।

बिशनी प्रतिदिन बेटे मानक की वापसी का इन्तजार करती है । क्योंकि जब तक बेटा नहीं पहुंच जाता, तब तक व्याह के बारे में सोच भी नहीं सकती, क्योंकि वह गरीब है और बेटी केहाथ पीले करने का आधार केवल मानक है ।

इस प्रकार आधुनिक युग के यांत्रिक एवं भौतिकतावादी पूंजीवादी समाज में विवाह जैसे पवित्र बन्धन को भी विकृत कर दिया है । आज विवाह के नाम पर लड़की के मां-बाप से पैसा लेना और उससे ऐशो-आराम करना अपना शान समझने लगे हैं । विवाह के समय लड़की के

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीजनाटक, पृ0 34
2. वही

मां-बाप से पैसों का व्यापार करना आधुनिक युग का धन्धा बन गया है ।

`सिपाही की मां` एकांकी में ही नहीं `प्यालियां टूटती हैं` एकांकी में भी अपरोक्ष रूप से दहेज की समस्या को उभारा गया है ।

इस प्रकार आलोच्य पुस्तक में परोक्ष-अपरोक्ष रूप से दहेज की समस्या को उठाया है और इस समस्या के कारण `सिपाही की मां` भी चिंतित एवं द्वन्द्वमय स्थिति में रहती है । और दीवानचन्द भी किसी से सहायता न मिल पाने से चिंतित एवं एवं तनावग्रस्त दिखाई देता है ।

(3) परम्परा सम्बन्धी द्वन्द्व - यह परम्परा सम्बन्धी द्वन्द्व उनके कहानी, उपन्यास एवं नाटकों में मिल जाएगा । इसके अतिरिक्त उनके एकांकियों में भी यह द्वन्द्व पर्याप्त मिल जाता है । आलोच्य पुस्तक के एकांकी तथा बीज नाटकों में यह परम्परा सम्बन्धी द्वन्द्व काफी सशक्त रूप में उभर कर आये हैं ।

`अण्डे के छिलके` एकांकी में एकांकीकार ने मुख्य रूप से श्याम, गोपाल, राधा एवं वीणा जैसे पात्रों के माध्यम से परम्परा के प्रति विद्रोह दिखाया है । इसके लिए खुले रूप से न होकर, परिवार की बुजुर्ग अम्मा से छिपाकर चोरी छिपे अपने-अपने कमरे में अण्डे खाते हैं । इसलिए कि परम्परावादी अम्मा को अच्छा नहीं लगेगा ।

यही मध्यवर्गीय परिवारों की विडम्बना है कि वे परम्परा का विरोध भी करना चाहते हैं और नये परम्परा आदर्श मूल्यों को भी अपनाना चाहते हैं । परन्तु वे लोग न तो पूरी तरह परम्परा को तोड़ने में समर्थ होते हैं और न ही आधुनिक बनने में । इसलिए इन लोगों की मन:स्थिति तनावग्रस्त रहती है और परिणामस्वरूप दोगलेपन की स्थिति से गुजरना

पड़ता है । वीना और श्याम की बातचीत देखिए --

श्याम - शिव, शिव, शिव । किसी और चीज का नाम लो, भाभी । इस घर में अण्डे का नाम ले रही हो ? जाओ, जल्दी से जाकर कुल्ला कर लो । मुंह भ्रष्ट हो गया होगा ।[1]

वीना - अण्डे में जीव कहां होता है ? जैसे दूध, वैसे अण्डा ।

श्याम - हरि, हरि, हरि । फिर वही नाम । भाभी, आज इस बरसते पानी में तुम जान निकलवाओगी। तुम से कोई कुछ नहीं कहेगा । अम्मा मेरे सिर हो जायेंगी कि सब तेरी ही करनी है । तुम खाओ, बनाओ, जो चाहे करो । मगर इस चीज का नाम मुंह पर मत लाओ ।[2]

इस तरह उन लोगों के मन में स्वीकार और अस्वीकार का द्वन्द्व एवं नये मूल्य और पुराने मूल्यों के बीच आस्था-अनास्था का द्वन्द्व चलता है । इसलिए सभी पात्र बनावटी खोखलेपन, पाखण्डों का जीवन जी रहे हैं । नये मूल्यों को अपनाना चाहते हैं । परन्तु पुराने मूल्यों के डूबने का दर्द भी छिपा हुआ है । इस सम्बन्ध में तिलकराज शर्मा लिखता है -- 'इसमें परम्परागत' मूल्यों - मानों के डूबने का स्वर ही मुख्य है । एक तरफ विरासत में मिला सब टूट रहा था, दूसरी तरफ यथार्थ के अस्तित्व बोध के कारण कुछ-कुछ अनचीता लगने वाले रूप में अनवरत उघड़कर, सामने आ रहा था - यानि अण्डे का गूदा छिलकों को उधेड़कर बाहिर आने लगा था । उसे हम विगत से मुक्ति और नव्य से जुड़न का सफल-सबल प्रतीक

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 11
2. वही

कह सकते हैं ।'[1]

एकांकी संग्रहकर्ता ने परम्परा के निर्वाह पर, विशेष ध्यान दिया है । संग्रह का पहला एकांकी जहां चाह कर भी परम्परा को नकार नहीं सका, विरोध नहीं कर सका, वहां से गृह के अन्त तक आते आते लेखक आधुनिक विचारधारा का सीधा सपाट वर्णन करता है । 'हं:' नाटक के ममा-पपा को बेटे-बेटियों द्वारा नकार दिया जाना इसकी चरम परिणति है ।

और ममा-पपा के कथनों से भी बेटे-बेटियों द्वारा तिरस्कृत एवं अपनेपन का पता चलता है -

'पपा - कि पपा को वेल्फेयर होम में भेज दो... यही लिखा होगा । ... पपा अब कूड़ा हो गया है । इसे डस्ट-बिन में फेंक देना चाहिए ।'[2]

'ममा - (उत्तेजित) कौन मुझे महीना भेजता रहा है ? कौन मुझसे पूछने आता रहा है कि ममा, कैसे करती हो तुम सब कुछ ?' 'बेटा लंदन में है... तीन साल हो गये उसके शक्ल देखे । बेटियां कहने को शहर में हैं ... पर महीना-महीना भर उसकी भी शक्ल नजर नहीं आती ।'[3]

जबकि भारतीय समाज में प्राचीन काल से यही चला आ रहा है कि मां-बाप की सेवा करनी चाहिए और अपने मां-बाप की सेवा करना एवं बुढ़ापे में उनका सहारा बनना हमारा प्रथम कर्तव्य माना जाता है । उस परम्परा को तोड़ कर आधुनिक संस्कारों एवं परम्परा को अपना लिया है ।

---

1. मोहन राकेश : अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 187
2. वही, पृ0 132
3. वही, पृ0 135-136

और बेचारे पुराने परम्परावादी विचारधारा वाले समझ नहीं पाते और वे मानसिक द्वन्द्व में रहते हैं कि उनके बच्चे कहां जा रहे हैं और क्या हो गया है ।

(4) परम्परावादी संस्कारों का द्वन्द्व

'अण्डे के छिलके' की अम्मा जमुना परम्परा-आदर्श-मर्यादावादी संस्कारों में विश्वास करनेवाली स्त्री है । वह आधुनिक संस्कारों एवं आदर्शों को स्वीकार करने में असमर्थ है । उसके मन में द्वन्द्व चलता रहता है कि उसके बच्चे उसकी बातों को महत्व नहीं देते ।

'आज दो घण्टे से मेरे कमरे की छत चू रही है । मैंने कितनी बार कहा था कि लिपाई करा दो, नहीं तो बरसात में तकलीफ होगी । मगर मेरी बात तो तुम लोग सुनी-अनसुनी कर देते हो । कुछ कहूं, बस हां मां, कल करा देंगे, मां, कह कर टाल देते हो । अब देखो चल कर कैसे हर चीज भीगरही है ।'[1]

अम्मा को घर में आधुनिक विचारों के आगमन स्वरूप होने वाली हरकतों का पता है, पर इस सब के बावजूद चुपचाप सहने एवं अनदेखा करने को मजबूर है । उनकी बातों का उनके बच्चों पर कोई असर नहीं पड़ता । इसलिए पुरानी दीवार प्रतीक है पुराने संस्कार एवं परम्पराओं की, जिसमें दरार आ गई है और रिस-रिस कर पानी की बूंदें टपक रही हैं । माधव का यह कहना है कि 'जहां तक अम्मा का सवाल है, अम्मा इन्हें नाली में पड़े हुए भी नहीं देखेगी ।'[2] इसलिए कि अम्मा अनदेखा करने को मजबूर है । तभी घर की मान-मर्यादा रह सकती है ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 22
2. वही, पृ0 28

आज `अण्डे के छिलके ` के अम्मा जैसे लोग कितने हैं जो आधुनिक संस्कारों एवं आदर्श-मर्यादाओं को न चाहते हुए भी अपने बच्चों की खातिर अनदेखा करने को मजबूर हैं । पुराने आदर्श मूल्यों एवं परम्पराओं को टूटते हुए अपने गीले नयनों से देख रहे हैं ।

(5) स्वच्छन्द जीवन जीने की व्यग्रता - राकेश की अन्य रचनाओं की तरह ही आलोच्य एकांकी संग्रह के अधिकांश एकांकियों में स्वच्छन्द जीवन जीने की व्यग्रता से उत्पन्न द्वन्द्व देखने को मिलता है ।

`अण्डे के छिलके ` एकांकी में स्वच्छन्द जीवन जीने की इच्छा स्वरूप ही अम्मा से छिपा कर सब अपनी इच्छा से कार्य करते हैं । कोई अण्डा खाते हैं तो कोई नावेल (उपन्यास) पढ़ती हैं या सिगरेट-शराब पीता है, पर वे लोग यह कार्य स्वतन्त्र या निर्भीक रूप से नहीं कर पाते क्योंकि उन लोगों को अपनी अम्मा से डर लगता है और वे स्वतन्त्रतापूर्वक जीना भी चाहते हैं । इसलिए श्याम का यह कथन उसके द्वन्द्व को स्पष्ट कर देता है कि `जरा संयम से काम लो भाभी । चार दिन जो अण्डे खा लिये हैं, वे छिलकों समेत वसूल हो जायेंगे ।`[1] `... `हमें अपनी अम्मा से भी प्यार है और अपनी खुराक से भी ।`[2]

इस तरह श्याम कशमकश में जीता है कि कहीं अम्मा को पता न चल जाए ।

इसमें बाकी पात्र वीना, राधा भी चुपके से नावेल पढ़े बिना अपनी स्वच्छन्द वृत्ति को रोक नहीं पातीं । वीना तो मुख्य रूप से स्वच्छन्द एवं खुले रूप से जीने की वकालत करती है । इसके लिए घर के बाकी सदस्यों के

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 11
2. वही, पृ0 12

लुका-छिपाव देखकर उसके मन में द्वन्द्व उठता है । इसलिए वह श्याम से कहती है -`भई, तुम लोगों की यह बात मेरी समझ में बिलकुल नहीं आती । अगर खाना ही है तो उसमें छिपाने की क्या बात है ।`[1]

दूसरे एकांकी `प्यालियां टूटती हैं ` में और भी प्रखर रूप से उभर कर आया है --`प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी के सभी पात्र दीवानचन्द को छोड़कर माधुरी, मीरा, भोलानाथ सभी नये-नये अमीर लोगों से दोस्ती बनाते हैं, जिसमें भावना, सम्वेदना, सहानुभूति जैसे भावों को कोई महत्व नहीं है, केवल दिखावा है । माधुरी स्वच्छन्द जीवन जीने के लिए पैसे को महत्व देती है । इसलिए दीवानचन्द जैसे निकटतम रिश्तेदार को भी ठुकरा देती है।

इस प्रकार स्वच्छन्द जीवन जीने की इच्छा ने आम व्यक्ति को और भी अधिक भटका दिया है । आज व्यक्ति द्वंद्वमय स्थिति में जी रहे हैं ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 11

(ग) राजनीतिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

राकेश अपनी रचनाओं में एक ओर तो पारिवारिक सामाजिक समस्याओं से रूबरू होते हैं तो दूसरी ओर राजनीतिक गतिविधियों से व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव और फलस्वरूप उत्पन्न द्वन्द्व को भी दिखाने में सक्षम रहे हैं । इसका सशक्त उदाहरण उनकी आलोच्य पुस्तक में देख सकते हैं ।

इसमें `बहुत बड़ा सवाल` तथा `सिपाही की मां ` एकांकी तथा `कुतरियां ` पार्श्व नाटक के माध्यम से एकांकीकार ने समसामयिक राजनीतिक स्थिति, परिस्थिति तथा आधुनिक युग के सत्ताधारियों की गतिविधियों पर व्यंग्य-प्रहार किया है । एकांकीकार ने उस माहौल तथा राजनीतिक गतिविधियों से जन जीवन पर पड़ने वाली दर्दनाक स्थिति एवं उनकी पीड़ाओं को अनुभव करके ही अपनी इन रचनाओं में अभिव्यक्त किया है । समसामयिक परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं से गरीब जनता की बेबसी, जीने के लिए अपने सिद्धान्तों से भटकते हुए व्यक्तियों के मानसिक द्वन्द्व का परिचय मिलता है ।

(1) भारत-पाक विभाजन के प्रभाव - `प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी के सभी पात्र विभाजन से पहले पाकिस्तान के रहने वाले थे और विभाजन के बाद भारत आ जाते हैं । भारत आकर माधुरी, भोलानाथ और मीरा अपनी स्थिति को मजबूत बना लेते हैं, जबकि दीवानचन्द विभाजन के पहले सेठ था, अब मानसिक तनाव के रहते कुछ भी नहीं है । अब केवल बीते दिनों की याद ही रह गयी है --`कहां दीवानचन्द की भरी-पूरी हवेली और कहां ये आज के दिन... । कभी शाह दीवानचन्द सोने का था, आज मिट्टी का भी नहीं ।`[1]

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 58

इतना ही नहीं, दीवानचन्द विभाजन के समय अपने बीवी-बच्चे तक खो देता है और वह इस दु:ख, पीड़ा से जिन्दा लाश की तरह जी रहे हैं । अब जब चिंतपुरनी में अपनी बेटी शुक्ला की हमउम्र की एक भिखारी लड़की को बेटी बना कर ले आए हैं । यह भी विभाजन के समय अपने मां-बाप से बिछुड़ कर अकेली रह गयी थी ।

विभाजन के बाद सरकार ने न तो शरणार्थियों के लिए कोई उचित व्यवस्था की, न ही उनकी नौकरी के लिए ही कुछ किया । परिणामस्वरूप दीवानचन्द एवं भिखारी लड़की जैसे लोग गरीब होते गए और माधुरी-भोलानाथ, मीरा जैसे लोग अमीर होते गए । यह स्थिति एकांकीकार के स्वयं की स्थिति भी है । जो विभाजन के प्रभाव से उबर भी नहीं पाए हैं । उनको एक तो अपने परिवेश से उखाड़ फेंकने का दर्द, तो दूसरे नये परिवेश में अपनों से ही मिला अजनबीपन एवं अपरिचित से मानसिक तनाव बढ़ने लगा और विभाजन की पीड़ा से मिले क्लेश से मुक्त नहीं हो पाए ।

(२) स्वातन्त्र्योत्तर भारत - आलोच्य पुस्तक के `प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के भिन्न भिन्न व्यक्तियों के चरित्र उजागर हुए हैं । इसमें माधुरी, भोलानाथ, मीरा और मिस्टर-मिसेज मेहता ऐसे लोग हैं जो विभाजन के बाद अमीर होते गए हैं और अब अभिजातीय वर्ग में आने के कारण निम्न वर्ग के लोगों के लिए उनके दिल में सहानुभूति, दया, ममता, करुणा नहीं रह गयी है ।

वे दीवानचन्द के मानवीय आचरण को भूल चुके हैं और वे पुराने रिश्ते-नाते की तोड़ देना ही समस्या का समाधान समझते हैं । परन्तु यही मानसिकता एवं सोच व्यक्ति को द्वन्द्व मय स्थिति में पहुंचा देती है । इस सम्बन्ध में डा० उर्मिला ने टिप्पणी की है --

`पैसे और इज्जत ने अचानक उन्हें अपने इतिहास से अलग कर दिया है । यह अन्तराल और अलगाव बहुत गहरा और दर्दनाक है । इतना दर्दनाक है कि अपने लोगों को अपना ही इतिहास चुभने लगता है ।`[1]

आज भी माधुरी, भोलानाथ, मीरा और मिस्टर एवं मिसेज मेहता जैसे लोगों की कमी नहीं है जो बाह्याडम्बर के लिए, भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए अपनों का ही दिल दुखाने से नहीं हिचकते । यही विडम्बना है कि आधुनिक युग के अभिजातीय वर्ग की विसंगति, जो अपने ही कृत्रिम व्यवहार से तनाव एवं द्वन्द्वमय जीवन जीते हैं।

(3) राजनीतिक प्रतिनिधियों की व्यंजना - राकेश की आलोच्य पुस्तक में राजनीतिक गतिविधियों की खुलकर व्यंजना हुई है । `सिपाही की मां`, `बहुत बड़ा सवाल` तथा `छतरियां` में राजनीतिक गतिविधियां देखा जा सकता है ।

`सिपाही की मां` एकांकी में अप्रत्यक्ष रूप से विश्व युद्ध सम्बन्धी विभीषिका का चित्रण है जिसमें युद्ध की भूमिका तैयार करते हैं बड़े-बड़े राजनेता तथा अन्तर्राष्ट्रीय नेता लोग, जो अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए आम आदमी को युद्ध की विभीषिका में झोंक देते हैं । युद्ध में सिपाहियों का जीवन तो खत्म होता ही है, परन्तु नित्य प्रति मरता है आम आदमी ।

`सिपाही की मां` के दोनों सिपाहियों के आपस में कोई जातीय दुश्मनी नहीं है, परन्तु दोनों सिपाही एक दूसरे की जान के दुश्मन बने हुए हैं ।

युद्ध से संबंधित मन में चल रहा द्वन्द्व केवल बिशनी के मन का द्वन्द्व

---

1. डा० उर्मिला मिश्र - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ० 152

ही नहीं है, यह आज के हरेक व्यक्ति का मानसिक द्वन्द्व को प्रकट करता है । परन्तु आम जनता के पास इसका कोई उत्तर नहीं है, न ही कोई समाधान है ।

'बहुत बड़ा सवाल' में भी सरकार की नीतियों को ही दिखाया गया है । इस एकांकी में लो ग्रेड वर्कर्स के लिए मकान बनवाने चाहिएं, इस विषय पर मीटिंग बुलाती है जिसमें लोक कल्याण समिति के सभी सदस्यों के सामने प्रस्ताव पास करके सरकार से मांग करने की योजना बनाते हैं । परन्तु मीटिंग में केवल बहसें होती हैं ।इसमें पात्र रमेश, सत्यपाल, मोहन जैसे लोग प्रस्ताव का विरोध करते हैं । ऐसे पात्र आज भी देखने को मिलते हैं जो ~~आ~~ नेताओं के चेले बन कर राजनीतिक दंगे, समाज संस्थाओं एवं यूनियनों में भ्रष्टाचार एवं आतंक फैलाते हैं और शर्मा, कपूर जैसे लोग कुछ काम करना चाहें तो भी नहींकर पाते ।

आज सरकार की तरफ से जनता के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनायी जाती हैं परन्तु उसका फायदा सरकार कोही मिलता है, आम जनता को नहीं । इसलिए सरकारकी नीतियों पर प्रकाश डालते हुए जीवन प्रकाश जोशी लिखते हैं --'आज की व्यवस्था('ब्यूरोक्रेस बड़े लोगों से बोझिल) की यही स्थिति है कि जिससे देश की करीब दस फीसदी से भी कम जनता को छोड़कर, बाकी जनता वर्तमान माहौल में महंगाई और मौत में कोई ज्यादा फर्क ही महसूस नहीं करता ।'[1]

आज के पढ़े लिखे लोगों पर व्यंग्य है कि वे कुछ करना तो चाहते हैं, परन्तु अपनी कुप्रवृत्तियों के कारण मीटिंग में जाते हैं, पर चाय-

---

1. जीवन प्रकाश जोशी - 'नाटककारमोहन राकेश (एक सर्वेक्षण समीक्षा), पृ० 92

मूंगफली, हंसी मजाक एवं गप्प-शप करने के लिए और समय पास करने के लिए । इसमें एकांकी का पात्र `मोहन` एकांकीकार मोहन राकेश की तरह ही लगता है । वे भी मीटिंग वगैरह में जाते थे और मीटिंग में उनके विचारों के अनुकूल न होने पर वे भी वाक्-आउट कर जाते थे । इसकी थोड़ी सी चर्चा उनके दोस्त कमलेश्वर ने `मेरा हमदम मेरे दोस्त` में की है ।

इन एकांकियों के अलावा उनके पार्श्व नाटक `क्वतरियां ` में आधुनिक युग के सत्ताधारियों पर व्यंग्य किया गया है । और उनके सफेदपोश होने का परदा फाश किया है । आज सत्ता धारियों ने व्यक्ति के पास समस्या ही समस्या छोड़ रखी है। कभी उनकी समस्याओं का हल नहीं किया जाता । आम आदमी नारे लगाते हैं --

> `इन्कलाब - जिन्दाबाद।
> हमारी मांगे, - पूरी करो।
> सब की मिलकर एक जबान,
> रोटी कपड़ा और मकान ।`[1]

परन्तु यह नारे भी पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्खिन, हा य-हाय के साथ दब कर रह जाता है । उसका नारा कोरा बन कर रह जाता है ।

आज हम अपने आसपास के देश की नेताओं का और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नेताओं की गतिविधियों को देख सकते हैं । कम शक्ति वाले नेता आम जनता को तो बड़े नेता अपने से छोटे लोगों पर तो बड़े नेता को

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 156

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नेताओं एवं बड़े-बड़े देशों तक अंकुश लगाए हुए हैं । आज एक देश दूसरे को गुलाम बनाने की योजना बना रहे हैं तो कोई किसी दूसरे देश को अन्य तरीकेसे परेशान कर रहा है ।

इस समस्या से आम जनता एवं एकांकीकार स्वयं भी परेशान हैं । वे राजनीतिक गतिविधियों से परिचित हैं । वे कर तो कुछ सकते नहीं, पर चिन्तागस्त एवं द्वन्द्वमयी स्थिति में सब जी रहे हैं ।

(घ) आर्थिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

राकेश की अधिकांश रचनाएं सामाजिक जीवन से ही संबंधित हैं । सामाजिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण समाज की आर्थिक समस्याओं का चित्रण यहां दिखाई देता है । अत: उनकी कहानी, उपन्यास, नाटक या एकांकी सभी में आर्थिक समस्या से जूझते हुए व्यक्तियों का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है ।

आलोच्य पुस्तक के सभी एकांकी, बीज नाटकों में भी एकांकीकार ने समाज के विभिन्न वर्गों के आर्थिक स्तरों को दिखाया है तथा इन एकांकियों के द्वारा आर्थिक असन्तोष से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व एवं अर्थ के लिए संघर्ष करते हुए लोगों का चित्रण किया है ।

(1) आर्थिक स्थिति का निरूपण

एकांकीकार ने इन एकांकियों एवं बीज नाटकों के माध्यम से विभाजन के समय की आर्थिक स्थिति तथा विभाजन के बाद की आर्थिक स्थितियों का निरूपण किया है । विभाजन के समय लोगों की दयनीय आर्थिक दशा तथा शरणार्थियों की दयनीय स्थिति एवं विभाजन के बाद की दयनीय आर्थिक स्थितियों को लेखक ने स्वयं देखा, अनुभव किया और उस स्थिति को अपनी इन रचनाओं में अभिव्यक्त किया है ।

प्यालियां टूटती हैं ' का पात्र दीवानचन्द विभाजन के समय अपना सब कुछ घर-बार धन-दौलत छोड़कर भारत चला आता है जहां तक कि अपनी बीवी और बच्चे से भी बिछुड़ जाता है। मीरा के पूछने पर कि वे छोटे-मोटे बच्चे क्या करते हैं । तो वे बताते हैं कि जोशाह दीवानचन्द सोने का था, वह आज मिट्टी का भी नहीं है । स्यालकोट से जो रुपया पैसा लिया भी था, वह माधुरी के परिवार पर खर्च दिया जो दिल्ली में आ कर घर बना कर सुख से रह रहे हैं और उनके सुख दुख से अनभिज्ञ हैं । इसीलिए वे अपनी आर्थिक स्थिति का बयान करते हुए व्यंग्य भी करते हैं कि --

'जो कुछ ला सकता था, ले आया था - बस ये चार-पांच जानें... ।

थोड़ा सा रुपया-पैसा जिस गांठ में लाया था, वह गांठ की गांठ मैंने लाहौर के अड्डे पर हवाई जहाज वालों को दे दी । मैंने कहा कि मेरी ये चार-पांच जानें हैं, इन्हें किसी तरह दिल्ली पहुंचा दो । पम्मी तब मेरी शुक्ला जितनी ही बड़ी थी । निक्कू शायद आठ-दस साल का होगा । ये लोग यहां पहुंच गये, तो मैंने समझा कि मेरा सब-कुछ पहुंच गया ।'[1]

तब से वह बेचारा दयनीय आर्थिक स्थिति से परेशान इधर-उधर भटक रहा है ।और बीवी बच्चे के खोने से, गरीबी से तनावग्रस्त रहने लगा और गरीबी के कारण ही दीवानचन्द को अपने ही इन रिश्तेदारों से तिरस्कार मिलने लगा ।

'सिपाही की मां ' की आर्थिक समस्या भी कम दयनीय नहीं है । इसमें सिपाही की मां की आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि मां को अपने बेटे को युद्ध की विभीषिका में झोंक देना पड़ता है । समाज की

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 59

इस आर्थिक विषमता पर व्यंग्य करते हुए लक्ष्मणदत्त गौतम कहते हैं --

'सिपाही की मां, की केन्द्रीय सम्वेदना तथाकथित आदर्श मूल्यों से हटकर कुछ महत्वपूर्ण यथार्थ बिन्दुओं को उजागर करती है कि वर्तमान व्यवस्था में नारी चाहे वह मां हो, पत्नी अथवा बहन - राजस्थान की हाड़ा रानी नहीं है जो सेनानी (पहचान) के रूप में अपना सिर काट कर राणा-चूड़ावत को युद्ध के लिए प्रेरित करे ।'[1]

विश्व युद्ध के समय से लेकर आज भी वही विषम आर्थिक समस्या से संघर्ष कर रहे हैं । लोगों के पास उसका कोई समाधान नहीं है । वे अपनी स्थिति सुधारने एवं गरीबी दूर करने के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं ।

आर्थिक समस्या सेउत्पन्न द्वन्द्व एकांकियों में ही नहीं, बल्कि उनके बीज नाटक 'शायद' और 'हः' में भी देखा जा सकता है । 'शायद' के स्त्री-पुरुष कभी सूरत, कभी पहाड़ पर, कभी विदेश जाने का, तो कभी सिनेमा जाने का कार्यक्रम बनाते हैं परन्तु सब कार्यक्रम अनिश्चय की स्थिति में रह जाता है । इसका मुख्य कारण उनके कमजोर आर्थिक स्थिति भी है । जो उनके पास इतना धन-दौलत भी नहीं है कि जी चाहे सर्वकरे । परिणाम पति-पत्नी अपने से आप से और आस पास वालों से भी ऊबाउ महसूस करने लगते हैं और मानसिक रूप से चिन्तित और तनावग्रस्त या द्वन्द्वमयी स्थिति में रहते हैं ।

दूसरा बीजनाटक 'हः' के ममा-पपा के साथ भी यही है । आधुनिक युग केव्यक्तियों की यही विडम्बना है कि बच्चे अपने बूढ़े मां-बाप को एक बोझ समझते हैं और वे सभी व्यक्तिगत स्तर पर अकेले जीना चाहते हैं । कोई किसी दूसरे केलिए नहीं । त्याग आदि की भावना समाप्त

---

1. लक्ष्मणदास गौतम (संपादक सुन्दरलाल कथूरिया) - नाटककार मोहन राकेश, पृ0 106

हो चुकी है । राकेश ने इन सम्बन्धों को या निभाने के जो कारण दिए हैं, वे आज तो और भी ज्वलन्त रूपसे हमारे सामने मुंह बाए खड़े हैं ।

`हं:` के पपा की दयनीय स्थिति वही है जो `आधे-अधूरे` के पात्र महेन्द्र की होती है। जो अपनी ही पत्नी एवं बच्चों से तिरस्कार पाता है । इसलिए डा० उर्मिला मिश्र लिखती हैं --`राकेश के आधे-अधूरे के नायक महेन्द्र की तरह `हं:` का नायक `पपा` बेकारी के कारण अपने ही घर में निर्वासित हो चुका है ।`[1]

`छतरियां` में आर्थिक समस्या के कारण ही आदमी अपने अस्तित्व तक को खो देता है। वह अपनी गरीबी दूर करने तथा दैनिक आवश्यकता पूर्ति केलिए संघर्ष करता है और अपने राह से भटक गया है । वह सत्ताधारियों के हाथ में बिक गया है और `कठपुतली` बन कर नाचने को मजबूर है । अब उसके पास अपनी भाषा, अपने शब्द और भाव नहीं हैं । वह निरर्थक जीवन जीने एवं अस्तित्वहीन जीवन जीने को मजबूर है ।

इस प्रकार एकांकीकार यह दिखाना चाहता है कि आर्थिक समस्या एवं आर्थिक विवशता विभाजन के समय सेलेकर आज तक वैसी की वैसी ही बनी हुई है । इस कारण व्यक्ति का मानसिक रूपसे तनावग्रस्त या द्वन्द्वग्रस्त रहना स्वाभाविक है ।

(2) आत्म सम्मान के संकटों की अभिव्यक्ति

आलोच्य एकांकी संग्रह में आत्म सम्मान के संकटों की भी अभिव्यक्ति हुई है । जहां पर आर्थिक दयनीय स्थिति से गुजर रहे हों और अपनी जीविका के लिए कहीं से कोई रास्ता नहीं मिल रहा हो तोऐसी स्थिति

---

1. डा० उर्मिला मिश्र - आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ० 108

में व्यक्ति को अपना मान सम्मान तक बेचता पड़ता है । `प्यालियां टूटती हैं ` के पात्र दीवानचन्द की स्थिति भी यही है । दीवानचन्द इतनी आर्थिक तंगी में होकर भी अपनी मेहनत से जो कर सकता था, कर देता था । लेकिन किसी के सामने नहीं झुका । परन्तु जब चिन्तपुरनी से एक भिखारी लड़की को बेटी शुक्ला की याद में बेटी बना कर लाता है, तब उस लड़की के पालन पोषण, पढ़ाई-लिखाई के लिए, व्याह के लिए कहां से पैसे लाता । इसलिए कोईरास्ता न देख कर अपने रिश्तेदार से मदद मांगने को मजबूर होता है ।

इस तरह की समस्या `प्यालियां टूटती हैं ` में ही नहीं `सिपाही की मां ` में भी दिखाई देती है ।

अत: आर्थिक समस्या के कारण ही दीवानचन्द जैसे स्वाभिमानी आदमी और रिफ्यूजी लड़कियों को अपने स्वभाव केविरुद्ध, अपनी इज्जत के विरुद्ध हाथ फैलाने को मजबूर होना पड़ता है ।

`कतरियां ` के आदमी तो अपना मान-सम्मान स्वं अस्तित्व खोकर एक कठपुतली तक बनने को मजबूर होता है । वह आर्थिक रूप से विवश, जीर्ण-शीर्ण स्थिति के कारण ही सत्ताधारियों के हाथबिकने को मजबू र होता है ।

इस प्रकार एकांकीकार ने आलोच्य पुस्तक के सभी एकांकी, बीजनाटक तथा पार्श्व नाटक के माध्यम सेआज के व्यक्तियों के आत्म सम्मान पर एक प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

(3) आर्थिक स्थिति के आधार पर एक नई जाति की संरचना - आलोच्य पुस्तक के एकांकियों के माध्यम सेएकांकीकार ने दिखाया कि देश में विभाजन के बाद एक नये वर्ग का उदय हुआ जो अर्थ को ही सब कुछ समझने लगा और

समाज में अपने दिखावे केलिए बनावटी जीवन एवं झूठे अभिमान के लिए पुराने रिश्तों से कटने लगा । जो उनके बराबरी नहीं कर सके, उनके साथ अपरिचित का व्यवहार करने लगा ।

`प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी में इसका उदाहरण हमारे सामने है । भारत-पाक विभाजन के बाद भोलानाथ माधुरी और मीरा धनी होते गए और दूसरीतरफ दीवानचन्द गरीब होता गया । परिणाम भोलानाथ, माधुरी और मीरा को दीवानचन्द के साथ का रिश्ता एक जबरदस्ती का रिश्ता बन गया ।

माधुरी जैसे लोग स्वयं के आचरण को न देख कर दूसरों की बुराई करना जानते हैं । और उन्हीं से झूठी प्रशंसा पाना भी चाहती हैं । इसलिए दीवानचन्द जैसे गरीब रिश्तेदार को उनके सामने नहीं पड़ने देना चाहती और बेचारे दीवानचन्द जैसे लोग गीले नयनों से चुप-चाप अपनों से मिले अपमान सहने को मजबूर होते हैं ।

(4) बेकारी की समस्या - बेकारी की समस्या आधुनिक युग की मुख्य समस्या बन गयी है । यह बेकारी की समस्या शिक्षित-अशिक्षित वर्ग के लिए हर जगह एक ज्वलन्त समस्या बन गयी है । शिक्षित वर्ग अपनी-अपनी पोथियों एवं डिग्रियां लेकर कभी बम्बई, कभी कलकत्ता, कभी दिल्ली भटकते फिर रहे हैं । सरकार इस तरफ पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दे पा रही है । अत: ऐसी परिस्थिति में तथा वातावरण में एकांकीकार अपने को बचा कर या इन समस्याओं को नजर अन्दाज करके आगे नहीं निकल सकते।

हालांकि आलोच्य पुस्तक में एकांकीकार ने अपरोक्ष रूपसे ही चर्चा की है, जैसे कि `प्यालियां टूटती हैं ` के दीवान चन्द बेकारी के कारण ही भोलानाथ-माधुरी से पैसे उधार मांगने को मजबूर हुए । और `सिपाही की मां ` में बिशनी अपने बेटे को कहीं नौकरी न मिलने के कारण ही युद्ध जैसे विभीषिका में झोंकने को मजबूर हुई ।

बीज नाटक `हं: ` में भी अपरोक्ष रूपसे दिखाई देता है । पपा की

बेकारी एवं रोगी से सब परेशान हैं । पपा को अपनों से ही तिरस्कार मिलता है । यहां तक कि ममा भी नौकर और मालिक में कोई अन्तर नहीं समझती ।

अत: यह बेकारी की समस्या से व्यक्ति के मन में कशमकश रहती है । मुख्य रूप से आज के युग में । वह बेकारी के कारण स्वयं तो परेशान रहता ही है और उसके घर-परिवार के रूखेव्यवहार से भी उसको तनावग्रस्त एवं द्वन्द्वमयी स्थिति तक पहुंचाने में सहायक होती है।

(ङ) धार्मिक जीवन सम्बन्धी द्वन्द्व

राकेश की रचनाओं में धार्मिक जीवन से संबंधित आस्थाओं, विश्वासों का वर्णन कम ही मिलता है। फिर भी इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने धार्मिक जीवन से सम्बन्धित विषयों को लिखा ही नहीं है । उनके कहानी, उपन्यास, नाटक की तरह ही उनके आलोच्य पुस्तक में भी देखने को मिलता है । और यह भी ध्यान देने की बात है कि इस पुस्तक के एकांकी में धार्मिक कट्टरता दिखाई नहीं देती । फिर भी एक तरह के विचार वाले नहीं होते, इसलिए धर्म से संबंधित व्यक्ति का मानसिक द्वन्द्व देखा जा सकता है ।

(1) धार्मिक आस्थाओं की अभिव्यंजना

आलोच्य पुस्तक के `अण्डे के छिलके ` एकांकी में इसका उदाहरण देख सकते हैं । इस एकांकी के पात्र अम्मा जमुना एक धार्मिक औरत हैं । इसलिए उसके लिए अण्डे खाना तो दूर, उसका नाम लेना भी पाप समझती हैं । अण्डा खाना तामसी भोजन समझती हैं । इसलिए वह अपने घर में अपने बच्चों पर भी इन सब चीजों को खाने पर अंकुश लगाती हैं । वह भी अपरोक्ष रूप से । वह सीधे रूप से अपने बच्चों को कुछ नहीं कहतीं । परन्तु अपने बच्चे पर धार्मिक आस्था का प्रभाव बनाए रखती हैं । परिणाम

स्वरूप उनके बच्चे चोरी छिपे अपने-अपने कमरे में अण्डा बना कर खाते हैं । श्याम कहता है -- संयम, संयम, संयम । जरा संयम से काम लो, भाभी । चार दिनें जो अण्डे खा लिए हैं, वे छिलकों समेत वसूल हो जायेंगे । अम्मा के कान में भनक भी पड़ गयी तो सारे घर का गंगा-इश्नान हो जाएगा । और तुम देख ही रही हो कि बादलों का दिन है । किसी को कुछ हो-हवा गया तो... ।'[1]

यहां तक कि उनके बहुएं कभी दिन में भी दरवाजे बन्द करके या रात को मोमबत्ती जला कर धार्मिक पुस्तक रामायण - महाभारत के बजले चन्द्रकान्ता सन्तति तथा अंग्रेजी नावेल पढ़ती हैं ।

इस प्रकार एकांकीकार ने समाज में आज भी व्याप्त धार्मिक आस्था-अनास्थाओं का चित्रण किया है। अण्डे के छिलके जमुना की तरह जो आज भी शुद्ध रूप से धार्मिक आस्था रखने वाली औरतों को देखने को मिलती है परन्तु उनके बच्चे चोरी छिपे तो सब कुछ खाते हैं । या चोरी छिपे खाने को मजबूर हैं । इसीलिए एक दूसरे से छिपाव-दुराव की स्थिति हमारे आस्पास के परिवारों में भी आसानी से देखने को मिल जाएगी ।

(२) साम्प्रदायिक संघर्षों की अभिव्यक्ति - आलोच्य पुस्तक के माध्यम से एकांकीकार ने साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति की है । हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिक दंगों के कारण ही भारत-पाक विभाजन हुआ । और विभाजन के साम्प्रदायिक परिस्थितियों में आम हिन्दू-मुसलमान को ही सबसे अधिक कष्ट सहना पड़ा ।उनको अपने ही भूमि से या अपने ही परिवेश से खदेड़ दिया गया है ।

---

1. मोहन राकेश, अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 11

प्यालियाँ टूटती हैं ' एकांकी के सभी पात्र उसी विभाजन के समय हिन्दू-मुसलमान के साम्प्रदायिक दंगों को सहते हुए जैसे-तैसे भारत पहुंचे थे । उसी विभाजन के समय ही दीवान की लड़की को कोई बदमाश उठा कर ले गया । और भिखारी लड़की अपने मां-बाप से बिछुड़ गयी । इसी राजनीतिक एवं धार्मिक साम्प्रदायिकता के कारण ही हिन्दू-मुसलमान को अलग कर दिया गया और भारत भूमि को दो खण्डों में विभाजित कर दिया गया ।

यह हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता विभाजन के समय में ही नहीं, बल्कि आज भी अपने चारों तरफ यही साम्प्रदायिक दंगे-फसाद दिखाई देते हैं ।

(3) लोक विश्वासों की व्यंजना - एकांकीकार ने आलोच्य पुस्तक में लोक विश्वासों की भी अभिव्यंजना की ह । हमारे देश में, खास तौर से गांवों में अभी भी भू त-प्रेत, भविष्यवाणी, जादू-टोना, नियति आदि पर अन्धाधुंध विश्वास किया जाता है जबकि उसका कोई प्रमाण नहीं है और गांव की बात छोड़ो, जब शहर के पढ़े लिखे लोग ही अपने मन से इन अन्ध विश्वासों को मिटा नहीं पाए हैं ।

'प्यालियां टूटती हैं ' एकांकी में भी एकांकीकार ने अपशकुन सम्बन्धी लोक विश्वास को प्याली के टूटने से जोड़ा है । 'प्याली का टूटना' माधुरी के लिए अशुभ है । वह अपना सन्देह मीरा को बताती है -- 'जब एक के बाद एक इस तरह प्यालियां टूटती हैं तो जरूर कोई न कोई अनिष्ट होता है ।'[1]

माधुरी को दीवान चन्द का आना अपशकुन लगता है । इसी से माधुरी तनावग्रस्त रहती है । वह अन्तर्द्वन्द्व में रहती है कि अगर दीवानचंद

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी, तथा बीज नाटक, पृ0 51

को मिसेज मेहता ने देख लिया तो घर घर में जाकर बताती फिरेगी । इसी तरह हम आज भी अपने आसपास इसी तरह के अन्धविश्वास करने वालों को देख सकते हैं ।

इस प्रकार आलोच्य पुस्तक के एकांकियों, बीजनाटकों तथापार्श्व नाटक के माध्यम से मोहन राकेश ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक-को चित्रित किया है और मुख्य रूप से समाज में फैली कुरीतियों, कुप्रथाओं, विषमताओं, कु-संस्कारों, वर्ग विभेद आदि का उल्लेख किया है ।आज के व्यक्तियों की कुप्रवृत्तियों, विडम्बनाओं, पाखण्डों, विसंगतियों पर व्यंग्य-प्रहार किया है । इन विभिन्न समस्याओं से संघर्ष करते हुए व्यक्ति तनाव-ग्रस्त मानसिक स्थिति में जी रहा है और अपने अस्तित्व की रक्षा और पहचान के लिए चिंतित है, इसलिए द्वन्द्वमयी स्थिति मेंजीने को मजबूर है ।

अध्याय - चार

'अण्डे के छिलके' संग्रह का शिल्प-विधान

(क) नाट्य-भाषा

(ख) नाटकीय विधान

(क) नाट्य-भाषा

कभी कभी किसी रचनाकार की पहचान हम उसकीभाषा से भी करते हैं । मोहन राकेश भी एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्हें हम उनकी भाषा के मध्यम से पहचान सकते हैं , उनके समकालीन रचनाकारों से उन्हें पृथक कर सकते हैं ।भावों के अधिक रंग तो उनके यहां नहीं मिलते, लेकिन भाषा के विविध रंग उनके साहित्य में अवश्य देखने को मिलते है । जहां तक नाट्य भाषा का प्रश्न है, यह मोहन राकेश का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है । साहित्य को उन्होंने जो कुछ भी नया दिया है, उसमें नाट्य-भाषा की भी गणना की जाती है । वे आजीवन नाटक के लिए एक नई भाषा की खोज में रत रहे । उनकी नाट्य भाषा का विश्लेषण करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि नाट्य भाषा के विषय में वे क्या सोचते थे ।

नाट्य-भाषा के विषय में मोहन राकेश का जो दृष्टिकोण है, उससे परम्परागत धारणा खण्डित होती है । जहां परम्परागत धारणा रंगमंच को मूलत: दृश्य माध्यम बनाती है, वहीं मोहन राकेश रंगमंच को मूलत: श्रव्य माध्यम मानते हैं । इस प्रकार रंगमंच को श्रव्य माध्यम मान कर उन्होंने नाटक, रंगमंच और उसकी भाषा पर नए सिरे से विचारकरना आरम्भ किया । नाटक को श्रव्य माध्यम कहने के मूल में उसकी शब्द निर्भरता है अर्थात् नाटक मूलत: शब्दों पर निर्भर होता है । लेकिन शब्द निर्भरता का यह अर्थ नहीं है कि नाटकों को शब्दों का जाल बना कर प्रस्तुत किया जाय । वे इसके कड़ेविरोधी थे । कम से कम शब्दों में अपनी बात कहना मोहन राकेश की विशेषता है । इसलिए वे शब्दों को बहुत ही संयमित ढंग से प्रयोग करते हैं । व्यर्थ का शब्द जाल बुनना वे पसन्द नहीं करते थे । शब्द प्रयोग की सार्थकता वे उसके नाटकीय अर्थ में मानते थे । शब्दों में यह नाटकीय भंगिमा तभी लायी जा सकती थी जब शब्द लय और ध्वनि को ध्यान में रख कर प्रयोग किए जायें । इसमें भी वे लय-नियोजन को ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं । गिरीश रस्तोगी ने ठीक ही लिखा है कि -'राकेश की शब्द के सम्बन्ध में यह धारणा और दृष्टि उनकी पूरी नाटक यात्रा में विकसित होती दिखायी देती है । इसीलिए वह मुख्य भूमिका उन बिम्बों

और दृश्य तत्वों की नहीं मानते जो रंगमंच और नाटक को सीमित करते हैं, बल्कि शब्द को, शब्द की लय और ध्वनि को, शब्द से ही उत्पन्न होते बिम्ब और दृश्य-तत्व को मानते हैं जो नाटक और रंगमंच की सम्भावनाओं को निर्मित करते हैं ।[1]

मोहन राकेश सही शब्द की खोज को नाटककार के लिए जरूरी मानते हैं । इस खोज में वे स्वयं आजीवन लगे रहे । `आषाढ़ का एक दिन` से लेकर `छतरियां` तक की भाषा यात्रा उनकी इसी खोज का परिणाम है । अपने आज के लिखे हर शब्द को कलतक के लिए अनिश्चित और अस्थायी मानकर चलना भी वे नाटककार के लिए जरूरी मानते हैं । वस्तुत: नाट्य-भाषा के सम्बन्ध में उनके अपने विचार एक नवीन भाषा को तलाशती हुई दृष्टि है जो स्थिर और बनी बनाई मृत भाषा को तोड़ने की कोशिश कर रही थी । वे भाषा को केवल शब्दों का समूह नहीं मानते, बल्कि सम्प्रेषण का माध्यम मानते हैं । भाषा की आंतरिक बनावट पर वे ज्यादा ध्यान देते हैं । शब्दों की सार्थकता वे नए-नए सन्दर्भों से जुड़कर नई अर्थवत्ता प्रदान करने में मानते हैं । इसीलिए उनका ध्यान ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के खास विन्यास पर केन्द्रित होता है ।

इस प्रकार नाट्य पात्र में भाषा के पक्ष को लेकर मोहन राकेश बहुत सतर्क थे । वे भाषा का विशिष्ट प्रयोग करते हैं । भाषा के माध्यम से कथानक की जड़ता को तोड़ना मोहन राकेश की विशेषता है। जड़ और मृत भाषा के प्रति उनके मन में विद्रोह है । विद्रोह और खोज की निरंतरता से ही राकेश के नाटकों में भाषा का रूप बदलता और विकसित होता रहा है ।

यदि हम मोहन राकेश के नाट्य साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमें उनकी नाट्य भाषा एक खास तरह का विकास दिखाई देता है। उनके सभी

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ 0 150

नाटकों की भाषा एक जैसी नहीं है । `आषाढ़ का एक दिन` और `लहरों के राजहंस ` की भाषा लगभग एक जैसी है । दोनों ही नाटकों की भाषा काव्यात्मक, बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक एवं भावात्मक है । इन नाटकों में समकालीन युग बोध को व्यक्त करने के लिए ऐतिहासिक कथानक का सहारा लेना पड़ा है । उस ऐतिहासिक वातावरण के दबाव के चलते भाषा तत्सम प्रधान हो गयी है। लेकिन फिर भी इन दोनों नाटकों को अपार सफलता मिली । इसका कारण उसकी काव्यात्मकता या तत्सम प्रधान शब्दावली उतनी नहीं है, जितनी उसके भीतर समायी हुई नाट्यानुभूति है। इन नाटकों की भाषा गहरी नाट्यानुभूति से प्रेरित है । गिरीश रस्तोगी लिखती हैं --`दोनों नाटकों की भाषा में कहीं भी औपचारिकता की गन्ध नहीं है। ऐसा नहीं लगता कि सीखी हुई भाषा के अभ्यस्त हाथों से नाटकीय स्थितियों को डाला गया है, बल्कि भाषा स्वयं ढलती जाती है -- शब्द के भीतर से उत्पन्न होती हुई नाटकीयता जिससे रंगमंच की दृश्य संभावनाएं विस्तृत होती जाती हैं ।[1]

यह मोहन राकेश की नाट्य भाषा का एक स्तर है । हम ऊपर लिख चुके हैं कि मोहन राकेश अपने आज के लिखे हर शब्द को कल तक के लिए अनिश्चित और अस्थायी मानकर चलना नाटककार के लिए जरूरी मानते थे ।इसे वे अपने लिए भी जरूरी समझते थे । इसीलिए उन्होंने `आषाढ़ का एक दिन` या `लहरों के राजहंस` जैसी भाषा पुन: नहीं रची । वे हमेशा अपने विचारों और युग सत्य को एक नई भाषा में व्यक्त करने की कोशिश करते रहे । अपने इन आरम्भिक नाटकों में युग के यथार्थ को व्यक्त करने के लिए वे ऐतिहासिक कथानकों का सहारा लेते हैं, लेकिन कालान्तर में वे इन ऐतिहासिक कथानकों का सहारा लेना छोड़ देते हैं और यथार्थ से सीधे टकराते हैं । इस पड़ाव पर आकर उनकी भाषा

---

1. गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ0 158

भी बदल जाती है । यह उनकी भाषा का दूसरा स्तर है, जिसे हम उनके नाटक `आधे-अधूरे ` में देख सकते हैं ।

आलोचकों ने `आधे-अधूरे` कीभाषा को एक ठोस कदम बताया है । इसकी भाषा जीवंत और बोलचाल की घरेलु भाषा है । इसमें पहले के नाटकों जैसी काव्यात्मकता या भावात्मकता नहीं है, बल्कि पूरा वातावरण ही एकदम बदला हुआ है। यह मोहन राकेश की खोज का सफल परिणाम है ।इस नाटक की भाषा की विशेषता यह है कि यह समकालीन जीवन के तनाव को सफलतापूर्वक पकड़ सकी है । डा० रीता कुमार `आधे अधूरे` की भाषिक विशेषता बताते हुए लिखती हैं - `वस्तुत: `आधे-अधूरे` की भाषा आम आदमी की भाषा होते हुए भी सर्जनात्मक शक्ति और रंग तत्वों से पूर्ण है । भाषा की सादगी, सच्चाई और तनाव को व्यक्त करने की क्षमता स्थान स्थान पर पाठक को करंट के समान छू जाती है । घर-घुसरा, नाशुकरे आदमी, रबड़ का टुकड़ा जैसे आज के समाज में प्रचलित इन नए शब्दों से राकेश ने इस नाटक की भाषा की समकालीनता को बढ़ाया है । ये ध्वन्यात्मक शब्द स्वयं बोलते हुए चलते हैं और पात्रों के आक्रोश के साथ-साथ उनके समूचे व्यक्तित्व को भी स्पष्ट कर देते हैं । अपने परिचित कथ्य को अपनी ही भाषा में पाकर दर्शक नाटक के सम्प्रेष्य को गहराई से ग्रहण करता है । ध्वनि और मौन के समन्वय से अनुभूति की सूक्ष्मता को हिन्दी में केवल राकेश प्रकट कर पाये हैं ।[1]

मोहन राकेश की नाट्य भाषा का तीसरा स्तर वह है जहा वे बेतरतीब, बेतुकी, टूटती-फूटती भाषा का प्रयोग करते हैं । इसे हम उनके दोबीज नाटकों `शायद` और `हं: ` तथा पार्श्व नाटक `छतरियां ` में देख सकते हैं । चूंकि हमारा विषय `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीजनाटक ` पुस्तक से संबंधित है । अत: हम उसी को केन्द्र में रख कर उनकी नाट्यभाषा का परीक्षण करते हैं ।

---

1. डा० रीता कुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में, पृ० 313

इस बात का जिक्र हम अध्याय दो में कर चुके हैं कि `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` में जितनी भी रचनाएं संकलित हैं, वे भिन्न-भिन्न समयों में लिखी गयी हैं । उनकी भाषिक संरचना के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि `अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां `, तथा प्यालियां टूटती हैं, उनके आरम्भिक एकांकी हैं । शायद ये `आषाढ़ का एक दिन` से काफी पहले लिखे गए होंगे । आज जिस रूप में मोहन राकेश ख्यात हैं, ये एकांकी उनके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाते । `बहुत बड़ा सवाल` उसके बाद की है । `शायद` और `हं:` के विषय में तो कहा ही जाता है कि इसके बीज शब्द `आधे-अधूरे में मौजूद हैं । `क़तरियां ` उनका आधुनिकतम प्रयोग है इसमें कोई सन्देह नहीं । इस प्रकार यदि हम केवल `अण्डे के छिलके ` संग्रह की रचनाओं को ही देखें तो मोहन राकेश की नाट्य कला और उनकी भाषा यात्रा को लक्ष्य कर सकते हैं ।

`अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां `, `प्यालियां टूटती हैं ` की भाषा औसत दर्जे की है । सांकेतिकता, द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण, भाषा और शारीरिक क्रिया का, भाषा और मन:स्थिति का गहरा सम्बन्ध मोहन राकेश की नाट्य भाषा की विशेषताएं हैं ।

`बहुत बड़ा सवाल` की भाषा उपर्युक्त तीनों एकांकियों की तुलना में अधिक ठोस एवं समृद्ध हैं । सरसरी तौर से पढ़नेपर यह हास्य एकांकी लगता है, लेकिन इसमें एक गहरा व्यंग्य है । यह व्यंग्य संकेत एकांकी की भाषा के भीतर से फूटता है । यह मोहन राकेश की विकसित नाट्य-कला का उदाहरण है । एकांकी का आरम्भ धूल झाड़ने और अंत भी कूड़ा साफ करने से होता है । इस धूल और कूड़े को साफ करने में गहरा व्यंग्य है । वस्तुत: एकांकी के हर शब्द में व्यंग्य है । भाषा और पात्र की क्रिया का गहरा सम्बन्ध उद्घाटित किया गया है । इसकी भाषा सरल

एवं सहज है, लेकिन अपने गठन में गहरी पैठ और अनुभव का तीखापन लिए हुए है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

'श्यामभरोसे : और ।

रामभरोसे : और कि मूंगफली के आधे छिलके राम भरोसे साफ करेगा, आधे श्याम भरोसे ।

श्याम भरोसे आंखें झपकाता है।

श्यामभरोसे : और कुछ नहीं ?

रामभरोसे : कुछ नहीं । (उसे बगलसे पकड़ कर सीधा खड़ा करता हुआ) अब सीधा को जा। बहुत कूड़ा कर गए हैं । साफ करना है ।'[1]

'शायद' और 'हं:' की भाषा बहुत बड़ा सवाल से भी एक कदम आगे है । इन दोनों बीज नाटकों में बोलचाल की भाषा और रंगमंच की भाषा का अद्भुत संयोजन है। समय और जीवन-दृष्टि बदलने के साथ-साथ भाषा और उसकी लय भी अपने आप बदलती चली गयी है । यहां तक पहुंचते-पहुंचते मोहन राकेश की भाषा और अधिक सांकेतिक हो गई है । वे अपनी बात को लम्बे संवादों की जगह छोटे संवादों में कहने लगे हैं । अर्थात् कम से कम शब्दों में बहुत कुछ कह देना । 'शायद' से एक छोटा सा उदाहरण द्रष्टव्य होगा --

'स्त्री : कैसा घर । खिड़कियां ही खिड़कियां हैं... रोशनदान एक नहीं है ।

पुरुष : (रुककर) वह दीवार भरवा दी है तुमने ?... बिस्तर के साथ की दीवार की ?

---

1. मोहन राकेश - 'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक पृ0 104

स्त्री : (कुछ तल्ख होकर) देखते ही हो... मेरे पास फुरसत कहां रहती है दिन भर ?'

यहां शब्दों का संयोजन और वाक्य विन्यास कुछ इस तरह का है कि फालतू समय बिताने बैठे अकेले दम्पत्ति की बातचीत सहज रूपमें अनुभव की जा सकती है । यहां भाषा के माध्यम से जिस वातावरण को मूर्त किया गया है, उससे लगता है कि यह रंगमंच पर पात्रों के संवाद नहीं, बल्कि घर के अन्दर की सहज या आम बातचीत का लहजा है ।

भाषा का यही तेवर `हं:` में भी है । छोटे-छोटे सांकेतिक संवादों में जिंदगी की ऊब, कड़वाहट, झुंझलाहट मूर्त हो गई है । इसमें भी अस्फुट वाक्यों, बोलचाल की भाषा का प्रयोग है । संकेतों से खूब काम लिया गया है और हरकतों, क्रियाओं को पात्रों के आंतरिक तनाव व आक्रोश से जोड़ा गया है। इसलिए वे हरकतें शब्दों में ज्यादा ध्वन्यात्मक और प्रभावशाली हैं । पपा का यू सूखी हंसी हंसना, ममा का फटक-फटककर मेज की दराज खोलना बंद करना, जमशेद का जूते से जोर-जोर की आवाज करतेहुए आना, ये सब एक सांकेतिक अर्थ लिए हुए हैं । जो उनके और शरीर में उठनेवाले द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है । `हं:` की ममा में `आधे-अधूरे` की सावित्री जैसी कड़वाहट, ऊब औरझुंझलाहट है। टूटते पारिवारिक मानवीय सम्बन्धों और उससेउत्पन्न निराशा, अकेलेपन को भाषा के सहारे ही पूरे बीज नाटक में मूर्त कर दिया गया है । यथा --

ममा : मुझसे अब नहीं होता, पपा...अब नहीं होता मुझसे ।...मेरे लिएआजकल इतना दर्द रहता है कि... ।

पपा : घर में एस्परीन नहीं है?

ममा हताशा के चरम पर पहुंच कर पल भरउसे देखती रहती है । फिर आवेश के साथ कुर्सी से उठ पड़ती है।

ममा : है...सब कुछ है घर में... क्या है जो नहीं है?

पपा : दवाइयां तो सब तरह की हैं । जाने कहां कहां भर रखी हैं तुमने ।

ममा : हां, भर रखी हैं ।

ममा : हां, भर रही हैं । और भी देख लो, क्या क्या भर रहा है ।'[1]

इस तरह के न जाने कितने उदाहरण हैं जो मोहन राकेश की भाषा-शक्ति को प्रकट करते हैं ।

पार्श्वनाटक 'कुतरियां' मोहन राकेश को और नए रूप में सामने लाता है । 'कुतरियां' उनकी शब्द और भाषा सम्बन्धी खोज की व्याकुलता का नमूना है ।भाषा कोअधिक से अधिक समर्थबनाने की प्रक्रिया में वे हमेशा लगे रहे और उस सीमा तक पहुंच गए कि मंच पर भाषा के मौन रूप का प्रयोग करने लगे तथा पार्श्व से आने वालीध्वनियों, प्रतिध्वनियों, विभिन्न शब्दों, आवाजों द्वारा ही युग की संवेदना को व्यक्त करने लगे । उनका भाषा-चिंतन बहुत कुछ वैसा ही है, जैसा अज्ञेय का । अज्ञेय भी आजीवन सार्थक शब्द का संधान करते रहे और अंतत: मौन पर पहुंचे । मौन कोभी उन्होंने वाणी दी यह कह कर कि मौन भी अभि-व्यंजना है । मोहन राकेश भी शब्द का संधानकरते हुए मौन तक पहुचतेहैं और उसे पार्श्व ध्वनियों, प्रतिध्वनियों के माध्यम से 'कुतरियां' में वाणी देते हैं ।उनकी 'कुतरियां' की भाषा इसी रूप में उल्लेखनीय है । उन्होंने नाट्यभाषा सम्बन्धी जितने भी मानदण्ड बनाए, सब का प्रयोग इस पार्श्व नाटक में देखने को मिलता है । 'कुतरियां' की भाषिक विशेषता को बताते हुए गिरीश रस्तोगी लिखती हैं कि -'भाषा पर बड़ा अधिकार इसमें मिलेगा । जैसी परिस्थिति की आवश्यकता है, भाषा वैसी ही ढल गई है । बिना किसी संकोच और अनिश्चय या सन्देह के पूरे आत्म विश्वास के साथ सिद्धान्त वाक्यों में संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया है जो निश्चय ही स्वाभाविक और आवश्यक है,

---

1. मोहन राकेश, 'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक', पृ0 139

तो अलग परिस्थिति में वास्तविकता और विसंगति से जूझने में लगातार दूर तक भद्दी गालियों का प्रयोग भी किया है, जो नाटक की स्थिति और लय से, समकालीनता से इस हद तक जुड़ा हुआ है कि अश्लीलता जैसे प्रश्नों की कोई गुंजाइश नहीं है, दूसरी ओर राजनीतिज्ञों की पुरानी पीढ़ी उर्दू भरी तकरीर करती हैं और उसकी लय सिद्धान्त वाक्यों की लय से अलग है। लड़ाई, कीर्तन, पागलपन, नारों, जुलूस सबकी भाषा की अपनी अपनी लय है, जो विविधता भी लाती है, अर्थ भी पैदा करती है। नाट्य-भाषा इसी लचीलेपन और आन्तरिक समझ की मांग करती है। राकेश की भाषा केप्रति सतर्कता और चिन्तन का यह नाटक प्रमाण है।[1] यह उदाहरण `क़तरियां ` की भाषिक संरचना के विषय में इतना सटीक है कि यहां दूसरी बार भी उद्धृत किया गया है। इससे पहले इस उद्धरण को अध्याय दो में उद्धृत किया जा चुका है।

इस प्रकार मोहन राकेश की नाट्य भाषा का परीक्षण करने पर हमें स्पष्ट रूप से एक विकास यात्रा दिखाई देती है। `आषाढ़ का एक दिन` से `क़तरियां ` तक की नाट्य-यात्रा वस्तुत: उनकी भाषा यात्रा ही है, जिस पर वे आजीवन एक जिज्ञासु की भांति आगेबढ़ते रहे। किसी पड़ाव पर ज्यादा देर तकठहरना न तो उन्हें जीवन में रास आया और न ही अपनी इस भाषा यात्रा में। नाट्य भाषा के विषय में उनके अपने विचार थे। यदि वे आज होते तोअसम्भव नहीं कि नाट्य-भाषा के और भी आयाम प्रस्तुत किये होते।

(ख) नाटकीय विधान

रंगमंचीयता - आधुनिक भारतीय रंगमंच का उदय उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है। परन्तु उसमें भारतीय परम्परा से भिन्न पश्चिमी रंग शैली का प्रभाव अधिक था। लेकिन पश्चिमी रंग शैली का प्रभाव

---

1. गिरीश रस्तोगी : मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ0 144

भी देर तक नहीं टिक सका । भारतीय रंगमंच अपना विकास करने के साथ-साथ रंग-शैली भी परिवर्तित करता गया और छठे दशक तक आते-आते भारतीय रंगमंच का अपना अलग और नया स्वरूप बनकर सामने आया । जिसने पारम्परिक रंग-शैली का अन्वेषण कर एक नयी नाट्य-शैली खोज ली । इससम्बन्ध में सुरेश अवस्थी लिखते हैं --

'अपने व्यक्तित्व की पहचान, पारम्परिक नाट्यद्वय का अन्वेषण और एक नयी, अधिक मौलिक और प्रामाणिक नाट्य-शैली की खोज छठे दशक के भारतीय रंगमंच की मुख्य प्रवृत्ति और उसकी सब से बड़ी घटना है । अन्वेषण तथा प्रामाणिकता की इसी भावना ने सम-सामयिक शास्त्रीय रंगमंच की नई चेतना का विकास किया । इस नई चेतना के विविध रूपों और पक्षों में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि आज लगभग दोशताब्दियों के आधुनिक भारतीय रंगमंच के इतिहास में पहली बार यह संभव हो सकता है कि हम एक प्रकार केराष्ट्रीय रंगमंच की तस्वीरें उभरते हुए देखते हैं । राष्ट्रीय रंगमंच से मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि आज हमारे नाटक और रंगमंचीय क्रियाकलाप में कुछ ऐसी प्रवृत्तियां विकसित हुई हैं और ऐसे रूपों और शैलियों का विकास हो रहा है, जिनमें एक विशिष्टता और जिनका स्वरूप देशव्यापी है ।'[1]

इस नये रंग-शैली आन्दोलन में भाग लेने वालों में मोहन राकेश मुख्य थे । जिसका प्रभाव एवं परिणाम उनकी हर रचना, नाटक एवं एकांकी में दिखाई देता है । वे समय के बदलने के साथ-साथ अपनी लेखन-शैली भी बदलते गये और नयी नयी रंग-शैली, भाषा-शैली, उस की तकनीक आदि भी खोजते गये ।

---

1. सुरेश अवस्थी (सम्पादक - डा० इन्द्रनाथ मदान) - हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ० 180

मोहन राकेश को नाटक के क्षेत्र में उनकी प्रयोगधर्मिता के कारण माना जाता है । इस दृष्टि से उनके नाटकों में रंगसंवीयता से संबंधित सफलता भी उनकी प्रयोगशीलता का ही परिणाम है और स्वयं भी रंगमंच में रुचि लेते थे। वे कभी नाटक के पात्र का अभिनय करते तो कभी निर्देशक बनते । उनकी अधिकांश रचनाएं पहले मंचित होने के बाद प्रकाशित होती थीं ।

वे अपने नाटकों के मंचन के लिए दूसरे निर्देशकों के साथ सम्पर्क बनाए रखना पसन्द करते थे । वे अपनी रचनाओं को केवल दर्शक बनकर मंच पर देखना पसन्द नहीं करते थे। इनकी यही प्रयोगशीलता आलोच्य पुस्तक के एकांकियों, बीज नाटकों एवं क्षतरियां पार्श्व नाटक में भी देखी जा सकती हैं। हालांकि इन एकांकियों को उनकी प्रारम्भिक रचना माना जाता है, इसलिए इस दृष्टि से उसमें बाद की रचनाओं की अपेक्षा कलात्मकता कम दिखाई देती है ।

इनमें शिल्प के स्तर पर आधुनिक मानसिकता रूप रंग - दृष्टि को ही उजागर करती है । सब नाटकों में जो रंग संकेत दिये गए हैं, वही कथा के मूल बिन्दु हैं । जैसे `अण्डे के छिलके ` के आरम्भ में -- `दरवाजे के आगे परदा लटक रहा है, जिससे पता नहीं चलता कि दरवाजा खुला या बन्द ।`[1] जो एकांकी के पात्रों के आचरण को ही दर्शाता है ।

`सिपाही की मां ` के आरम्भ में रंग-संकेत दिया गया है । सस्ता हाल चारपाई, फटी हुई लोई, घिसी हुई दरी, लकड़ी का दूव दरवाजा, फटी एवं मैली धोती आदि जो बिशनी मुन्नी की दयनीय आर्थिक स्थिति तथा जर्जर जीवन का हीरेखांकन करते हैं तथा `अभी रात बहुत बाकी`, `गहरा अंधेरा छा जाना` बिशनी केमानसिक रूप की निराशा का ही परिचायक है ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 9

प्रतीक - प्यालियां टूटती हैं ` के आरम्भ में `बंगले के पीछे की तरफ बरामदा` तथा `लान के बीच में रखी कुर्सी`[1] जो माधुरी की अवचेतन एवं चेतन मन के प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग हुआ है और स्वयं को आधुनिकता के आवरण में छुपाने के प्रयत्न का प्रतीक है । और माधुरी द्वारा `अपने हाथों में मुंह छिपा लेना` उसकी सारी कोशिशों के बावजूद सत्य को न छुपा पाने की ग्लानि है ।

`बहुत बड़ा सवाल` में बच्चों के स्केचों का प्रयोग, धूल झाड़ना, संसार का मानचित्र आदि व्यक्ति की तुच्छ मनोवृत्ति एवं प्रवृत्तियों को ही उजागर करते हैं । आरम्भ में, अन्त में धूल झाड़ना और कूड़ा साफ करना, उनकी निरर्थकता, निष्क्रियता तथा अर्थहीनता को ही उजागर करती है ।

`कुर्सियां ` नाटक में अन्त में व्यक्ति के हाथ में एक-एक करके कुर्सियों का फिसलना, उनके अवचेतन मन, उनकी निरर्थकता, निष्क्रियता, अस्तित्वहीनता की विडम्बनाओं का द्योतक है ।

आलोच्य एकांकियों की कथावस्तु आगे नहीं बढ़ती है । नाटक में आने वाली हर वस्तु तथा पात्रों के सारे कार्य-व्यापार प्रतीकात्मक रूप से हमारे सामने आते हैं । `अण्डे के छिलके ` एकांकी के सभी पात्र आपस में और अम्मा से छिपा कर अण्डे खाते हैं । और उसके छिलकों को मोजे में भर कर छिपाया जाता है जो कि पुराने मूल्यों के टूटने का ही परिचय देता है तथा एकांकी का यही केन्द्र बिन्दु है । इसमें मुख्य बात अण्डे को छिपा कर खाने में नहीं, बल्कि छिलकों को छिपाने की प्रक्रिया में है ।

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 50

इसमें रामायण-महाभारत की जगह चन्द्रकान्ता संतति एवं अंग्रेजी नावेल पढ़ना भी पुराने और नये का प्रतीक है तथा घर की दोनों बहुएं पुराने मूल्यों को छोड़कर नये मूल्यों को अपनाना चाहती हैं । इस तरह अण्डे को छिपाकर खाने और चन्द्रकान्ता सन्तति एवं अंग्रेजी नावेल को चोरी छिपे पढ़ना, इन सब पात्रों को दोगली स्थिति में पहुंचा देते हैं ।

प्रतीक रूप में नये मूल्यों के आगमन के रूप में स्टोव, केतली, फ्राइ पैन, बिजली का चूल्हा आदि की योजना सार्थक बन पड़ी है।

`प्यालियां टूटती हैं` एकांकी में प्यालियों का टूटना सम्बन्धों, रिश्तों-नातों, पुराने संस्कारों, मूल्य सम्वेदना के टूटने का ही प्रतीक है तथा पुरानी प्याली का टूटना, मौसा दीवानचन्द के आगमन, मीरा का पत्रिका खोलना - बंद करना, दीवानचन्द का पम्मी के लिए हमेशा प्रसाद-मिठाई लाना, ये सब प्रतीक हैं ।

`बहुत बड़ा सवाल` में व्यक्तियों की तुच्छ मानसिकता और निरर्थकता के लिए `धूल` तथा `मूंगफली` के छिलके प्रतीक हैं । इसमें चाय की प्यालियां, मूंगफली के छिलकों, कोरी बहस, प्रस्ताव और प्रस्ताव ही रह जाता है जो उनके निम्न-स्तरीय प्रवृत्तियों की मानसिकता का ही द्योतक है ।

बीज नाटक `शायद` और `हं:` लगभग एक ही तरह के नाटक हैं । `शायद` में मूंगफली के छिलके, मरहम एवं बिल्ली के बच्चे तथा बिस्तर के पास वाली दरार सब प्रतीक हैं । जो स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्धों को संभालने की कोशिशों के प्रतीक हैं । `हं:` बीज नाटक में जूठी प्यालियां, चिट्ठी, पुराने चिथड़े (पट्टियां), प्यालियों के टुकड़ों को ड्यूरा फ्रिक्स से जोड़ने के लिए सोचना, सब प्रतीक रूप में आया है । इसलिए जयदेव तनेजा

मानते हैं कि `ममा-पपा की सम्पूर्ण त्रासदी का रेखांकन करने के लिए ही जुटाया गया सार्थक सामान है ।`[1]

जहां तक पार्श्व नाटक `छतरियां ` का प्रश्न है, इसको नाट्य क्षेत्र में एक नया प्रयोग माना जाता है। रंगमंच की सफलता को ही नाटक की सफलता कह सकते हैं । इसमें पठन-पाठन से इतनी सफलता नहीं मिलेगी, जितनी कि उसको रंगमंच पर मिल सकती है ।

इसमें `कुकुरमुत्ते ` प्रतीक-बिम्ब के रूप में प्रयोग हुआ है जो व्यक्ति की निष्क्रियता, निरर्थकता एवं अस्तित्व हीनता का ही परिचायक है।

इस प्रकार कुल मिलाकर आलोच्य पुस्तक के एकांकी, बीज नाटक, पार्श्व नाटक, रंगमंचीय स्तर पर सफल रहे हैं तथा यह सफलता एकांकी-कार की प्रयोगधर्मिता तथा हिन्दी नाटक के लिए नई दिशा की खोज का ही सफल परिचायक है ।

अभिनय - अभिनय की दृष्टि से आलोच्य पुस्तक के सभी एकांकी, बीज नाटक तथा छतरियां पार्श्व नाटक को सफल कह सकते हैं । इस पुस्तक में बहुत बड़ा सवाल एकांकी को छोड़कर पात्र कम ही हैं । परन्तु इसमें भी विषय के अनुसार पात्रों की अधिकता से दुरूहता नहीं आती ।

प्रथम एकांकी `अण्डे के छिलके ` में छः पात्र हैं जिनका नाटक की कथावस्तु के अनुसार चुनाव हुआ है । इस एकांकी का अभिनय करना कठिन नहीं है । इसमें नित्य प्रतिदिन की जिन्दगी का रेखांकन हुआ है । जैसे श्याम का सीटी बजाते हुए गैलरी में प्रवेश करना, मौसम के कारण बरसाती पहने रहना और घर में प्रवेश करते ही -

---

1. जयदेव तनेजा -`नई रंग चेतना और हिन्दी नाटककार, पृ० 263

`श्याम - अरे । कमरा खाली । न भैया, न भाभी (पुकारकर) भाभी ।

वीना - कौन ? श्याम ?... क्या बात है ?`[1]

इसी तरह अम्मा जमुना दूर से आती हुई आवाज देती हैं --

अम्मा - `वीना । ओ वी... गोपाल अभी आया है कि नहीं ?`[2]

और अम्मा के कमरे में पहुंचने से पहले ही गोपाल, राधा, वीना, द्वारा `अण्डे के छिलके को चीनी की प्लेट से ढकना तथा छिलकों को जम्पर से ढकना तथा अम्मा को पता चल न जाए, डरसे उड़े हुए चेहरे का रंग, एवं घबराहट, जो दर्शकों को कौतुहल एवं रोचक बनाए रखने में सफल हुए हैं तथा इससे पात्रों के चरित्रों का भी उद्‌घाटन होता है ।

दूसरा एकांकी `सिपाही की मां ` में भी पात्र कम हैं तथा पात्रों के माध्यम से एकांकीकार केअभिनय कुशलता का परिचय मिलता है । दूसरे दृश्य में बाहर से किसी आहत व्यक्ति की आवाज, बिशनी का चारपाई से अचानक उठ जाना, फौजी लिबास में घायल मानक का बिशनी के पैरों के पास गिरना, बिशनी के द्वारा मानक का सिर गोद में रख कर पूछना -

`बिशनी - (उसका सिर हाथों में लेकर विह्वल स्वर में) तू ऐसा क्यों हो रहा है बेटे... क्या हुआ है तुझे ?

मानक - मैं घायल हूं, मां । मुझे बहुत गोलियां लगी हैं । और...और दुश्मन अभी भी पीछे लगा है ।`[3]

साथ में बिशनी और दूसरे सिपाही की बातचीत होती है । पात्रों की

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 8
2. वही, पृ० 21
3. वही, पृ० 41

अभिनय कुशलता पाठक-दर्शक को एकांकी के आरंभ से अन्त तक अपने में बांध सकती है तथा दर्शकों को अपनी तरफ आकर्षित करने में और उनके मन में कौतूहल बनाए रखने में एकांकीकार की अभिनय-कौशल का ही परिचय मिलता है ।

तीसरा एकांकी `प्यालियां टूटती हैं ` में भी जैसे माधुरी का चाय की मेज के पास व्यस्त दिखाई देना, तथा उसके हाथ से गिर कर प्याली का टूट जाना और अपशकुन की आशंका से तनावग्रस्त दिखाई देना आदि ।

यह अभिनय योजना इस एकांकी के पात्रों के चरित्र को उजागर करती है और इस प्रकार की अभिनय-योजना से रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेला जा सकता है ।

चौथा एकांकी `बहुत बड़ा सवाल ` में पात्र अधिक हैं परन्तु उसकी विषय-वस्तु को देखने पर, पात्रों का अधिक होना ही रंगमंच की सफलता है क्योंकि उसमें दृश्य परिवर्तन नहीं होता । कथावस्तु देखा जाए तो कुछ भी नहीं है, केवल लो ग्रेड वर्कर्ज के लिए सस्ते मकान की मांग को लेकर प्रस्ताव पास करने के लिए मीटिंग बुलायी जाती है, जो मीटिंग न होकर सभी आपस में बहसें ही चलती हैं । उनकी बहसें उनके तुच्छ चरित्र को ही उजागर करती हैं ।

सन्तोष - प्रस्ताव अपने में बिलकुल स्पष्ट है ।
मोहन - क्या स्पष्ट है ?
सन्तोष - क्या स्पष्ट नहीं है ?
मोहन - बहुत कुछ स्पष्ट नहीं है ।`[1]

इसमें सभी पात्र आपस में कोरी बहसें ही करते हैं, लेकिन सभी

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीजनाटक, पृ0 93-94

पात्र का अभिनय कौशल देखने को मिलता है । यही अभिनय-योजना मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत की जा सकती है ।

पहला बीज नाटक `शायद` भी अभिनय योजना की दृष्टि से सफल ही है तथा मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। पात्रोंकीभीड़-भाड़ नहीं है । इसमें पति-पत्नी अर्थात् स्त्री-पुरुष की बातचीत देखिए -

स्त्री - फिर सोचने लगे ?
पुरुष - (आखें झपकाता हुआ) नहीं ।
स्त्री - थोड़ा टहल क्यों नहीं आते ।
पुरुष - मन नहीं है ।
स्त्री - (सब प्लेटों को ट्रे में समा लेने में व्यस्त) क्या कहा... क्या नहीं है ? मैंने सुना नहीं ।
पुरुष - (जेब से सिगरेट निकालता हुआ) वह माचिस... अभी ली थी तुमने...।[1]

दूसरा बीजनाटक `हः` भी `शायद` की तरह ही है । पपा-ममा अपने बुढ़ापे से परेशान उदास हैं । अतः इसके बीच में बातचीत भी द्वन्द्व एवं तनावग्रस्त मानसिक स्थिति से होती हैं जिससे उसकी बातचीत में वाक्य टूटा हुआ सा लगता है । इसमें भी लेखक ने अपने अभिनय कौशल का ही परिचय दिया है । पपा औरममा की बातचीत देखिए --

पपा - वही बात लिखी होगी उसने ... ।
ममा - (उत्तेजित) मैंने कहा है न, जहांगीर की चिट्ठी नहीं है ।
पपा - कि पपा को वेलफेयर होम में भेज दो... यही लिखा होगा । फिर से ।
ममा - (क्रोध के साथ) मैंने कहा है न तुम से कि... ।[2]

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 105
2. वही, पृ0 132

अन्तिम नाटक 'छतरियां' अपनी अलग विशेषता लिए हुए है। इसमें पात्र मौनो एक्टिंग करते हुए दिखाई देते हैं और इस नाटक की सफलता, उसकी मंचन एवं अभिनेता की अभिनय कुशलता पर ही निर्भर करती है । इसलिए उसमें मुख्य रूप से अभिनय क्षमता की अपेक्षा की जाती है । इस सम्बन्ध में तिलकराज शर्मा लिखते हैं --'मंचन और अभिनेयता की दृष्टि से यह सर्वोपरि है, पर उसके लिए बड़े ही कुशल अभिनेता का होना आवश्यक है । पेंच की तरह घूमती कायाएं, आदमी, छतरियां, पार्श्व से सुनाई देती स्फुट-अस्फुट विभिन्न ध्वनियां, विशेष प्रकार की फिकरा कशी - सब मिल कर बड़े सशक्त और कुशल ढंग से आज के आदमी की पीड़ा को उभारते हैं ।'[1]

इस प्रकार कुल मिलाकर आलोच्य पुस्तक के सभी एकांकी, बीजनाटक छतरियां, पार्श्व नाटक में अभिनय की दृष्टि से सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है । अन्त में जयदेव तनेजा लिखते हैं -

'नाटकीय कार्य व्यापार के द्वारा मामूली यथार्थ की ऊपरी एवं बाहरी सतह से जीवन के आन्तरिक एवं सूक्ष्म सत्यों की तलाश तथा अपने समय की विसंगतियों और विडम्बनाओं को अभिनय रंग रूपों में अभिव्यक्त करते, राकेश के ये एकांकी और अन्य नाट्य प्रयोग आधुनिक हिन्दी नाट्य-लेखन की एक उल्लेखनीय उपलब्धि हैं ।'[2]

अत: निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि मानसिक अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करने वाले ये एकांकी इस काल की नवीन उपलब्धि हैं । इन साहित्यिक एकांकियों का सृजन भी रंगमंच की आवश्यकताओं और सामाजिक के द्वन्द्व को अभिव्यक्त करने को मुद्दा बना कर किया गया है ।

---

1. तिलकराज शर्मा , अपने नाटकों के दायरे में मोहन राकेश, पृ0 119
2. जयदेव तनेजा - नयी रंग-चेतना और हिन्दी नाटककार, पृ0 264

रंग-संकेत - आलोच्य पुस्तक के एकांकियों तथा बीज नाटकों तथा `क़तरियां` पार्श्व नाटक में विविध प्रकार के रंग संकेत दिये गये हैं । परन्तु इस विविधता में भी तकनीक स्तर पर कुछ समानता देखी जा सकती है । जैसा कि जयदेव तनेजा लिखते हैं --

`रचनाकाल की दृष्टि से `अण्डे के छिलके ` से लेकर क़तरियां तक के एक बड़े अन्तराल को देखते हुए रचनाकर्म के कुछ विकास बिन्दु भी इनके माध्यम से रेखांकित किये जा सकते हैं । जैसे `अण्डे के छिलके ` के आरंभ, `सिपाही की मां ` के आरम्भ एवं अन्त और `प्यालियां टूटती हैं ` तथा `बहुत बड़ा सवाले के आरम्भ में पर्दे का उल्लेख किया गया है, जबकि `शायद` , `हं:` और `क़तरियां ` ये पर्दे का स्थान प्रकाशालोक ने ले लिया है । यह परिवर्तन राकेश के रंगमंच के प्रत्यक्ष सम्बन्ध तथा उसकी निरन्तर बदलती प्रदर्शन-तकनीक एवं शैली के साथ-साथ अपनी रंग चेतना को विकसित करते चलने का द्योतक भी है ।`[1]

मंच-सज्जा - मंच सज्जा की दृष्टि से उनकी आलोच्य पुस्तक के एकांकियों एवं बीज नाटक और पार्श्व नाटक `क़तरियां ` में कहीं सरल तो कहीं कठिन सजावट की जरूरत है । किसी एकांकी में थोड़े से सामान में सफलतापूर्वक खेला जा सकता है और किसी भी स्थान पर खेला जा सकता है । जबकि कुछ नाटकों में विशेष सजावट की जरूरत है । इसमें `अण्डे के छिलके ` के आरम्भ में मंच-सज्जा का संकेत देखिए -- पर्दा उठने पर, गैलरी वाला दरवाजा खुला दिखाई देता है । बायीं ओर के दरवाजे के आगे परदा लटक रहा है जिससे पता नहीं चलता कि दरवाजा खुला है या बन्द । कमरे में कोई नहीं है ।`[2]

---

1. जयदेव तनेजा, `नयी रंग चेतना और हिन्दी नाटककार`, पृ० 261-62
2. मोहन राकेश, `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक`, पृ० 9

परन्तु इसमें अन्तिम दृश्य में पर्दा का प्रयोग नहीं किया गया है, जबकि `सिपाही की मां ` एकांकी में आरम्भ और अन्त में पर्दे का प्रयोग हुआ है । इसलिए `सिपाही की मां `, एकांकी `अण्डे के छिलके ` का अगला चरण कह सकते हैं । `सिपाही की मां ` एकांकी के आरम्भ में लिखा है --

`देहात के घर का आंगन, अन्धेरा और सीलदार ।आंगन के बीचों-बीच एक खस्ताहाल चारपाई पड़ी है । एक और वैसी ही चारपाई दीवार के साथ खड़ी है ।दायें कोने में दो-तीन मिट्टी के हंडियां पड़ी हैं । सामने एक लकड़ी काटूटा हुआ दरवाजा है, जो घर के अन्दर खुलता है । दरवाजे पर एक अंगोछा और चारपाई पर एक फटी हुई धोती सूख रही है । बायीं और बाहर जाने का रास्ता है, जिसमें किवाड़ नहीं है ।`[1]

इसमें साधारण सा कोई भी कमरा, दो चारपाई, एक चरखा, थोड़े मिट्टी के बर्तन, और कुछ मैले कपड़े , बस इतने में ही काम चल जाएगा। इसलिए इस एकांकी को कहीं भी और किसी भी स्थान पर सफलतापूर्वक खेला जा सकता है ।

इसके दूसरे दृश्य में भी ज्यादा परिवर्तन नहीं है । बस प्रकाश योजना द्वारा रात का दृश्य दिखाया गया है ।

जहां तक `प्यालियां टूटती हैं ` एकांकी के मंच-सज्जा का सवाल है, इसमें एकांकीकार ने बड़े लम्बे संकेत दे दिए हैं । जैसे --` एक नये बने हुए बंगले का पीछे की तरफ का बरामदा, जिसके आगे छोटा-सा लान है । बरामदे के दो बड़े-बड़े दरवाजे हैं जो अन्दर कमरों में खुलते हैं । एकछतरी

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 31

लान के बीच में लगि है, जिसके इर्द-गिर्द कुछ सात बेंत की आराम कुरसियां लगी हैं, जिसके साथ दो गोल तिपाइयां हैं, जिन पर सुन्दर मेजपोश बिछे हैं । दायीं ओर सफेद कपड़े से ढंकी हुई बड़ी मेज है, जिस पर चाय का सामान लगाया जा रहा है ।'[1]

इतने सारे सामान की व्यवस्था करना हर जगह संभव नहीं होती । अत: इस एकांकी को बिना विशेष व्यवस्था एवं मंच-सज्जा किये नहीं खेला जा सकता । और इसको हर जगह खेले जाना थोड़ा सा कठिन होगा । परन्तु इसकी विशेष व्यवस्था करके सफलतापूर्वक खेला जा सकता है ।

दो बीज नाटक के मंच-सज्जा में प्रथम बीज नाटक 'शायद' में केवल एक साधारण सा कमरा चाहिए और खाने की मेज और कुछ भोजन की प्लेटें । और एक बिस्तर । इसलिए 'शायद' बीज नाटक कम सामानों के कारण कहीं भी और किसी भी जगह में खेला जा सकता है । इसके लिए कुछ सजावट की विशेष आवश्यकता नहीं । जबकि दूसरे बीज नाटक 'ह:' में काफी साज-सज्जा की जरूरत है । नाटक की शुरुआत में एकांकीकार ने लिखा है --

पुराने ढंग के साज-सामान से लदा एक बड़ासा कमरा । टूटी हुई डाइनिंग टेबल के इर्द-गिर्द अलग-अलग तरह की तीन कुरसियां, ड्रेसिंग टेबल पर दवाई की शीशियां, जूठी प्यालियां और हर तरह की चीजें । साथ-साथ लगे तीनों ऊंचे कबर्ड इस तरह से बन्द जैसे एक मुद्दत से उन्हें खोला ही न गया हो । इस कमरे के बीचोंबीच खिड़की से सटे एक बड़े पलंग पर चादर ओढ़े पपा ।'[2]

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ0 50
2. वही, पृ0 125

मंच-सज्जा की दृष्टि से इस बीज नाटक `हः` को थोड़ा सा मेहनत करके खेला जा सकता है । तीन चार कुर्सियां, एक बिस्तर, कुछ दवाई की शीशियां, एक ड्रेसिंग टेबल, तीन कबर्ड, कुछ प्यालियों की आवश्यकता है । इसलिए इस सामान का हर जगह उपलब्ध होना थोड़ा कठिन होगा । इसलिए इस को हरस्थान पर खेला नहीं जा सकता ।

आलोच्य पुस्तक के अन्तिम नाटक `छतरियां ` में मंच-सज्जा की कोई विशेष व्यवस्था की जरूरत नहीं है । मंच पर एक कोने में रंग-बिरंगी छतरियां रखी हुई हैं । बाकी जगह खाली है । इसलिए इस `छतरियां ` नाटक को कहीं पर भी सफलतापूर्वक खेला जा सकता है । इसमें परदे के पीछे की ध्वनियों और प्रतिध्वनियों के माध्यम से रंगमंच पर कार्य होता है ।

संवाद योजना - आज जीवन-परिस्थिति तथा परिवेश के बदलने के साथ साथ नाटकों की संवाद-योजना भी बदलती जा रही है । आज नाटकों में संवाद का महत्व इस बात में है कि छोटा या बड़ा संवाद, वह पात्रों के व्यक्तित्व एवं चारित्रिक विशेषता को उजागर करने में सक्षम हो । वही संवाद महत्वपूर्ण होगा , इस सम्बन्ध में डॉ० गिरीश रस्तोगी लिखती हैं --

`पहले जब नाटक में कथा-तत्व प्रधान होता था और नाटककार को भारतीय आदर्श जीवन दर्शन, दार्शनिक विचार प्रस्तुत करते रहते थे, तब संवाद ज्यादातर पात्रों के `कथन`मात्र वाद-विवाद, तर्क-वितर्क के रूप में आते जाते थे, लेकिन अब घटना जाल कम और द्वन्द्वात्मकता, मानसिक गुत्थियों या चारों तरफ व्याप्त व्यक्ति का दोहरापन मुख्य हो गया है, संवाद-रचना भी एक कठिन काम हो गया है । यही नाटककार स्वयं एक चिंतक समीक्षक बन जाता है और यही गहरे अनुभव की आवश्यकता होती है । संवाद की सारी सुन्दरता पात्र के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने में और उससे भी अधिक भाव-भंगिमाओं, अभिनय, गीत, अंग-संचालन सभी की

सद्भावना लिए होने में है । संवादों के संक्षिप्त होने या लम्बे होने से उतना अन्तर नहीं पड़ता, जितना कि उसके पीछे व्यापक नाट्यानुभूति होने से । मोहन राकेश ने अपने नाटकों की संवाद-रचना से यह सिद्ध कर दिया है ।'[1]

यही कारण है कि उनके नाटकों एवं एकांकियों के संवाद मात्र कोरे संवाद नहीं, बल्कि किसी न किसी अर्थ का संकेत करते हैं । पात्रों की मन:स्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्वों को उजागर करती है । परन्तु इसमें ध्यान देने की बात है कि -`अण्डे के छिलके सहित चारों एकांकी संवेदना के उस गुजरे हुए तेवर को आख्यायित करते हैं जो सन् 50-60 की मनो रचना का संकेत देते हैं, जबकि `बीज नाटक` अपने प्रभावी कौशल के बावजूद आधे-अधूरे की भूमिका का आभास देते हैं और पार्श्व नाटक `छतरियां ` पूर्ववर्ती प्रयोग के चलते उसी परम्परा में एक प्रयास है ।'[2]

इसलिए उनके एकांकी, बीज नाटक और `छतरियां ` पार्श्व नाटक के संवादों में अन्तर मिलता है । `अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां `, `प्यालियां टूटती हैं ` के संवादों में काफी बोझिल एवं कमजोर से लगते हैं, जबकि बहुत बड़ा सवाल एकांकी, बीज नाटक `शायद` और `हं:` तथा `छतरियां ` पार्श्व नाटक के संवाद रोचक, चुस्त, सुगठित , आकर्षक लगते हैं ।

फिर भी इसका मतलब यह नहीं है कि यह एकांकी एक दम से बेकार एवं बोझिल, हों । इसमें भी भले ही संवाद अधिक लम्बे और कम

---

1. डा०गिरीश रस्तोगी - मोहन राकेश और उनके नाटक, पृ० 22-23
2. लक्ष्मणदत्त गौतम (सं० सु० कथूरिया), नाटककार मोहन राकेश (प्रयोगधर्मिता के द्वन्द्व धनुष), पृ० 102

आकर्षक हों, पर कथा को गति प्रदान करने में कहीं भी अवरुद्धता पैदा नहीं करते । और इन एकांकियों के कुछ पात्रों के संवाद भी किसी न किसी अर्थ का संकेत देने में सफल हुए हैं । जैसे `अण्डे के छिलके` के पात्र वीना, राधा, जमुना आदि के संवाद में मिल जाते हैं । वीना के संवाद देखिए -- `भई तुम लोगों की यह बात मेरी समझ में नहीं आती । अगर खाना ही है तो उसमें छिपाने की क्या बात है ? सब के सामने खाओ, मां जी नहीं खातीं, इसीलिए रसोई घर की बजाय यहां कमरे में बना लेते हैं । और अण्डे में जीव कहां होता है ? जैसे दूध है, वैसे अण्डा ।`[1]

दूसरा एकांकी `सिपाही की मां` भी शायद प्रथम एकांकी के समय ही लिखा गया है, इसलिए उनके कथनों में कोई बदलाव नजर नहीं आता । परन्तु इसकी विषय-वस्तु सामाजिक विषय से ऊपर विश्व-युद्ध से सम्बन्धित है । इस एकांकी के पात्रों के संवाद भी प्रभावशाली, आकर्षक एवं व्यक्तियों एवं पात्रों के चरित्रों को उजागर करने में सक्षम हैं । जैसे बिशनी, मुन्नी, रिफ्यूजी लड़कियों का कथन और कुन्ती के संवादों में उन के चारित्रिक विशेषता को प्रकट करता है ।

इसी तरह ही `प्यालियां टूटती हैं` एकांकी के संवाद भी पाठकों को अधिक प्रभावित नहीं करसके हैं । जितना कि बाद के नाटकों में उन्होंने प्रभावित किया है । फिर भी उनके पात्रों के सम्वादों से आकर्षक, चरित्रोत्कर्षक और मूल संवेदना को उजागर करने में सक्षम हैं । इनके संवाद कृत्रिमता से दूर हैं । और संवादों के पात्रों के चरित्रोत्घाटन करने में सहायक हुए हैं । माधुरी एवं भोलानाथ एवं दीवानचन्द के संवादों में उनके चरित्र को उजागर करती है ।

---

1. मोहन राकेश : अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 11

माधुरी - ये जब भी आते हैं तो मुझे न जाने कैसा-कैसा लगता है ।... इन्हें देखकर मुझे एक घिनौनी सी सिहरन होती है ।... ये जैसे उन गुजरे हुए दिनों की काया है ।"[1]

इस एकांकी संग्रह में तीनों एकांकियों की अपेक्षा चौथे एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' के संवाद काफी प्रौढ़, चुस्त, आकर्षक, प्रभावशाली, रोचक और पाठक को प्रभावित करने में सफल है ।इसमें छोटे-छोटे संवाद में भी पात्रों के मनःस्थिति तथा उसके चरित्र को उजागर करने में पूर्ण सफल हैं । यह राकेश के नये नये नाट्य प्रयोग का ही परिणाम है कि उनके नाटकों के संवाद भी समय के साथ-साथ बदलते जाते हैं । इसमें कथावस्तु न होने पर भी संवादों के माध्यम से कथावस्तु में उभार आता है ।

इनमें पात्रों के वाद-विवाद के बीच पात्रों के संवाद रोचक एवं कौतूहल उत्पन्न करते हैं तथा राम भरोसे एवं श्याम भरोसे केबीच व्यंग्य पूर्णसंवाद बाबुओं की पोल खोलने में सफल हुए हैं । इसमें पात्रों के फालतू संवाद देख सकते हैं --

शर्मा - मैं समझता हूं, अब और किसी के आने की आशा नहीं करनी चाहिए । अध्यक्ष महोदय नहीं आये । इसलिए आज की मीटिंग की अध्यक्षता के लिए मैं कपूर साहब के नाम का प्रस्ताव करता हूं ।"

सत्यपाल - मैं इसका समर्थन करता हूं ।

कपूर - (गला साफ करके) भाइयो और बहनो ।"[2]

---

1. मोहन राकेश : अंडे के छिलके, अन्य एकांकी और बीज नाटक, पृ0 55
2. वही, पृ0 83

मोहन राकेश के एकांकियों की एक मुख्य विशेषता यहहै कि संवाद-योजना में भाषा-अन्तराल या शब्द अन्तराल का प्रयोग ।उनके मतानुसार नाटक शब्दों के नहीं, शब्दों के बीच का होता है ।` एक शब्द से दूसरे शब्द के बीच में अन्तराल को ही उन्होंने मुख्य बिन्दु माना हे । यही अन्तराल देखने में संवाद आधा अधूरा सा लगता हे परन्तु यही अन्तराल पात्रों के मनोभावों, उनकी मन:स्थितियों एवं अर्न्तद्वन्द्वों को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम होता है ।

इनके आलोच्य एकांकी संग्रह में ध्यान देने की बात है कि उन्होंने अपने एकांकियों में `अण्डे के छिलके`,`सिपाही की मा`, प्यालियां टूटती हैं ` और बहुत बड़ा सवाल में शब्दों के अन्तराल का प्रयोग किया हे । जबकि दोनों बीज नाटक -`शायद` और `हं:` में मुख्य रूप से प्रयोग किये हैं । इसलिए लोग इनके एकांकियों को आरम्भिक रचनाएं मानते हैं । बीज नाटकों को बाद की। और यही संवादों में अन्तर उनकी प्रयोग-धर्मिता की पहचान हैं। वह समय के बदलने के साथ-साथ अपने भाषा-संवादों को भी बदलते जाते हैं ।

`शायद` बीज नाटक के पात्र स्त्री-पुरुष अपने जीवन से ऊबे हुए, निराश, खालीपन, निष्क्रियता से मन में हर समय अन्तर्द्वन्द्व चलता है और मन में अस्थिर एवं आशंका से कुछ न कुछ दिमाग में घूमते रहते हैं । सोचते रहते हैं । जब शब्द बाहर निकलता है तो एक शब्द से दूसरे शब्द के बीच में स्वत: ही अन्तराल उत्पन्न होने लगता है । स्त्री-पुरुष के संवाद देखिए --

`स्त्री - बुद्ध है... पता नहीं क्या... नहीं है ?
पुरुष - पता नहीं है... जहां तक मेरा ख्याल है ।
स्त्री - कुछ तो है - - याद नहीं आ रहा - - - अभी आ जायेगा याद... ।[1]

---

1. मोहन राकेश - `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीजनाटक,पृ0111

इसके छोटे छोटे एवं अधूरे संवाद दोनों की मन:स्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने में सक्षम हैं । संवादों के अन्तराल से दोनों के जीवन के निराश, खालीपन, निष्क्रियता को ही प्रकट नहीं करती, बल्कि वातावरण को भी गमगीन बनाने में सफल हुए हैं ।

दूसरा बीज नाटक `हं:` में तो यह संवाद अन्तराल का प्रयोग एकांकीकार ने और भी अधिक कुशलता का परिचय दिया है । इसमें पपा-ममा अपने वृद्धावस्था एवं रुग्णावस्था से उत्पन्न मन:स्थिति तथा ममा की दयनीयता का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ किया है जो छोटे छोटे शब्दों के बीच नाटक लिखने का ही परिणाम है । इस `हं:` बीज नाटक में पात्रों की मन:स्थिति एवं मानसिक द्वन्द्व को उजागर करने में एकांकीकार सफल हुए हैं । पपा और ममा के संवाद देखिए -

ममा - कितनी टूटी प्यालियां उधर पड़ी हैं... किचन में... ।

पपा - (बड़बड़ाता हुआ) कितना कुछ कितना इनके लिए... क्या हुआ ?

ममा - ढेर का ढेर कि किसी दिन डयूराफिक्स से जोड़ लूंगी... ।

पपा - और करता रहता, करता रहता - - तो भी क्या हो जाता ?'[1]

पपा और ममा के संवाद दोनों के बीच की दूरी तथा अपने जीवन में ऊबे हुए सीमा, झुंझलाहट को प्रकट करता है । पपा, ममा के लिए कभी डालिंग हुआ करता था । अब वह टूटी प्याली की तरह एक कोने में रखने लायक रह गया है । रिश्ते नाते सब तो उनके

---

1. मोहन राकेश - अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक, पृ० 140

छोड़ ही चुके हैं । अब ममा भी समाज की विडम्बना के कारण एक बोझ की तरह ढोए जाने को मजबूर है ।

'हं:' के संवाद में वाक्य छोटे-छोटे होने के कारण और भी रोचक गतिशील आकर्षक बन पड़े हैं और पात्रों कीचारित्रिक विशेषताओं को एवं उनके मन:स्थितियोंएवं अन्तर्द्वन्द्व को उजागर करने में सफल हुए हैं ।

'छतरियां' मोहन राकेश का प्रसिद्ध पार्श्व नाटक है । यह संवादहीन नाटक उनकी प्रयोगशीलता एवं नये नये नाट्य शब्द की खोज का ही परिणाम है ।इस सम्बन्ध में डा० रीता कुमार लिखती हैं --

'छतरियां, नामक पार्श्व नाटक नाट्य क्षेत्र में एक नया प्रयोग है । कथावस्तु , चरित्र निर्माण और संवाद के अभाव में केवल नेपथ्य की ध्वनियों के आधार पर चलने वाला यह नाटक शिल्प की दृष्टि से हिन्दी नाटक को सर्वथा एक नये आयाम से ही जोड़ता है ।'[1]

अत: इसमें रंगमंच पर न तो कोई विशेष पात्र का चरित्र उभरता है और न ही पात्रों के बीच संवाद होता है । इसमें पर्दे के पीछे से ध्वनियां एवं प्रतिध्वनियां आती हैं । ध्वनि के आधार पर मंच पर जनसमूह कभी निष्क्रिय एवं कभी क्रियाशील दिखाई देता है तो कभी पैंच की तरह घूमते जनसमूह दिखाई देता है । इसमें पर्दे के पीछे से कभी रेडियो द्वारा प्रसारक होता है तो कभी नारे लगाने की आवाज, तो कभी पुतली का भाषण दिखाई देता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस एकांकी संग्रह के सभी एकांकियों के संवाद, बीज नाटकों के संवाद आदि कुल मिलाकर रोचक, आकर्षक, चारित्रिक विशेषताओं को दर्शाने में एकांकीकार सफल रहे हैं । संवाद संक्षिप्त, सुगठित एवं चुस्त होने के कारण मंच पर सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं ।

---

1. डा० रीता कुमार -'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक, मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, पृ० 328

उपसंहार

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर भारत के अब तक के सबसे सफल नाटककार हैं । उन्होंने कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, डायरी, यात्रा संस्मरण, सभी कुछ लिखा । वे अपने रचना-संसार में उसी तरह अभिव्यक्त हुए हैं, जैसे अपने साहित्य में निराला ।उनके रचना-संसार से गुजरते हुए ऐसा लगता है जैसे हम उनके जीवन-संसार से गुजर रहे हों । उनके व्यक्तिगत जीवन में यदि हम थोड़ा झांक कर देखें तो उसकी कहानी भी बड़ी दिलचस्प लगती है । ऊपर से शांत, जिंदादिल दिखने वाले राकेश भीतर से बहुत ही उदास और बिखरे हुए थे । उनके जीवन में कभी भी ठहराव नहीं आया । जीवन में उन्होंने तीन शादियां और कई नौकरियां कीं । तीसरी पत्नी अनीता के साथ वे जीवन के अन्तिम क्षण तक रहे । सभी नौकरियों को छोड़ते हुए अन्ततः उन्होंने स्वतन्त्र लेखन का पेशा चुना। कहना न होगा मोहन राकेश का व्यक्तित्व काफी जटिल था । व्यक्तित्व की यह जटिलता रचनात्मक द्वन्द्व के रूप में उनके लेखन में उभरी है ।

मोहन राकेश का लेखन कार्य जिस परिवेश में शुरू होता है, वह स्वतन्त्र भारत का छठा दशक था । भारत विकास की ओर अग्रसर था । इस विकास के पीछे विनाश की नींव भी पड़ रही थी । राजनीतिक और आर्थिक जीवन में भ्रष्टाचार और विषमता तो फैल ही रही थी, धर्म और नैतिक आदर्शों का भी दुरुपयोग हो रहा था । धर्म की आड़ में अनैतिक अपराध हो रहे थे तो नैतिक आदर्शों का उपयोग बाह्याडम्बर के रूप में हो रहा था । समाज में एक नई पीढ़ी पैदा हो रही थी जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता को धता बता कर पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण कर रही थी, लेकिन वह इन दोनों के बीच अपने को `एडजेस्ट` नहीं कर पा रही थी, इसलिए वह कुंठाग्रस्त होती जा रही थी ।सारांश

में यही वह परिवेश था जब मोहन राकेश साहित्य-जगत में प्रवेश करते हैं । उनके रचना-संसार में उनके व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ स्वतन्त्र भारत का यह परिवेश गुंथा हुआ है ।

मोहन राकेश अपना साहित्यिक जीवन एक कहानीकार के रूप में शुरू करते हैं । `एक और जिंदगी`, `परमात्मा का कुत्ता`, `मलबे का मालिक`, `उसकी रोटी`, `सौदा` जैसी प्रसिद्ध कहानियां उन्होंने लिखीं । `अन्धेरे बन्द कमरे ` उपन्यास भी काफी प्रसिद्ध हुआ । उन्होंने डायरी, यात्रा संस्मरण, निबन्ध आदि भी लिखे, लेकिन उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि एक नाटककार के रूप में ही मिली । `आषाढ़ का एक दिन`, `लहरों के राजहंस`, `आधे-अधूरे ` उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक हैं । इन बड़े नाटकों के साथ साथ उन्होंने छोटे-छोटे नाटक और एकांकी भी लिखे हैं जिनमें `अण्डे के छिलके` अन्य एकांकी तथा बीज नाटक` उल्लेखनीय है ।

एकांकी, जैसा कि नाम से ही आभास मिल जाता है, एक छोटी विधा है । उपन्यासों की भांति इसमें जीवन की विराटता का समावेश नहीं होता, बल्कि कहानियों की भांति जीवन का कोई एक पहलू ही चित्रित होता है । आम तौर पर एकांकी में एक ही अंक होता है । हिन्दी में काफी अच्छे एकांकी लिखे गए हैं । `बादल की मृत्यु`, `भोर का तारा`, `ऊसर`, `सूखी डाली`, `नए मेहमान`, `कारवां `, `तोलिए`, `दीपदान`, `टूटते परिवेश` आदि हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध एकांकी हैं । पिछले दो-तीन दशकों में सफल उल्लेखनीय एकांकी बहुत कम लिखे गए हैं । आज भी वस्तुत: एकांकी के नाम पर ज्यादातर रेडियो-एकांकी ही लिखे जा रहे हैं जो बहुत कुछ सामयिक विषयों पर रेडियो की मांग पर तैयार किए जाते हैं । ऐसे एकांकियों का साहित्यिक स्तर प्राय: बहुत ऊंचा नहीं होता । इसलिए इस क्षेत्र में बहुत कम नाम इस बीच उभर कर आए ।

'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' में चार एकांकी -'अण्डे के छिलके', 'सिपाही की मां', 'प्यालियां टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल', 'दो बीज नाटक -'शायद' और 'हं:' तथा एक पार्श्व नाटक 'कतरियां' संकलित हैं। 'अण्डे के छिलके' एकांकी पारिवारिक वातावरण लिए हुए एक हास्य एकांकी है। इसमें जिस परिवार का चित्रण है, उसमें प्राचीन संस्कारों वाले लोग भी हैं और आधुनिक संस्कारों वाले लोग भी। दोनों प्रकार के लोगों में टकराहट होती है, लेकिन यह टकराहट बहुत मुखर नहीं है। फिर भी एकांकीकार अपने उद्देश्य में काफी हद तक सफल रहा है। 'सिपाही की मां' का कथानक युद्ध की विभीषिका से सम्बन्धित है। इसमें युद्ध के दूरगामी प्रभाव को चित्रित किया गया है। युद्ध आदमी को कितना हिंसक और क्रूर बना देता है, इसे मानक के माध्यम से दिखाया गया है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से युद्ध होता नहीं दिखाया गया है, लेकिन संवादों के माध्यम से युद्ध की विभीषिका का जो वर्णन है, उससे युद्ध का रूप साकार हो उठता है। 'प्यालियां टूटती हैं' एकांकी आज के कटु सत्य को व्यक्त करता है। आधुनिक नव धन पशु कितने अमानवीय हैं, उनमें कितना खोखलापन, बाह्याडम्बर समाया हुआ है, इसे यह एकांकी बहुत ही यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करता है। 'बहुत बड़ा सवाल' एक व्यंग्य एकांकी है। इसका कथानक उन मध्य वर्गीय बाबुओं के चारों ओर बुना गया है जो जड़, ढुलमुल स्थिति में जीते हैं। वे न तो संघर्ष करना जानते हैं और न ही सक्रिय होकर झुकना, फिर भी आशा करते हैं कि उन्हें जीवन की सारी सुविधाएं मिल जाएं।

'शायद' और 'हं:' बीज नाटकों का कथानक उपरोक्त एकांकियों से भिन्न है। 'शायद' का कथानक स्त्री-पुरुष नामक दो पात्रों के इर्द-गिर्द ही घूमता है। दोनों ऊबे हुए और कुंठित हैं। उन्हें जीवन एकरस लगता है। अपनी इस ऊब और कुंठा को वे बाह्य उपकरणों से दूर करना चाहते हैं, विभिन्नस्थानों पर जाना चाहते हैं। अन्ततः वे कहीं नहीं जाते। वस्तुतः यह बीज नाटक आज के नगरीय स्त्री-पुरुष के जीवन

की कहानी है । नाट्य समीक्षकों का कहना है कि इस नाटक में मोहन राकेश का व्यक्तिगत जीवन व्यक्त है । `हः` इसके आगे की स्थिति है । इसमें जीवन का नग्न यथार्थ चित्रित है । जहां ममा के माध्यम से एक स्त्री की झुंझलाहट, उसकी मजबूरी का चित्रण है वहीं `पपा के माध्यम से एक उपेक्षित पड़े व्यक्ति की जिन्दगी की विवशता चित्रित है । पार्श्वनाटक `छतरियां ` आज के मानवीय संकट को प्रस्तुत करता है ।

मोहन राकेश के उपरोक्त एकांकियों, बीज नाटकों एवं पार्श्व नाटक में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप मूल रूप से प्राचीन संस्कारों और आधुनिक युग के संस्कारों के द्वन्द्व, मानवीय सम्बन्धों में आए बदलाव एवं स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में बदलाव के रूप में चित्रित है । केवल `छतरियां` ही ऐसा पार्श्वनाटक है, जिसमें युग का द्वन्द्व समग्र रूप में चित्रित है । `अण्डे के छिलके ` एकांकी में द्वन्द्व का स्वरूप प्राचीन संस्कारों औरआधुनिक युग के संस्कारों के द्वन्द्व के रूप में चित्रित है । यह द्वन्द्व सामाजिक बदलाव का भी सूचक है ।इसमें चित्रित द्वन्द्व कहीं भी विद्रोह का रूप नहीं लेता । द्वन्द्व का यहसंयमित रूप अन्त तक बना रहता है । `सिपाही की मां ` में चित्रित द्वन्द्व एक ओर मुन्नी के विवाह को लेकर है तो दूसरी ओर मानक को लेकर । मानक को लेकर बिशनी के मन में जो द्वन्द्व उभरता है, वह इसी अर्थ में सामाजिक है कि बिशनी केवल मानक की ही मां नहीं है, बल्कि हर उस मां का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका इकलौता बेटा युद्ध में गया था । इसमें युद्ध की विभीषिका के फलस्वरूप उत्पन्न अमानवीयता और मानवीयता का भी द्वन्द्व चित्रित है । `प्यालियां टूटती हैं ` में जो द्वन्द्व चित्रित है, वह मूलतः आर्थिक स्थिति में बदलाव के कारण है । आर्थिक स्थिति बदल जाने से व्यक्ति की मनोवृत्ति भी बदल जाती है । अपनी इस बदली हुई मनोवृत्ति के कारण वह प्रत्येक पुरानी चीज से सम्बन्ध तोड़ लेना चाहता है, यहां तक कि पुराने मानवीय सम्बन्ध भी । परन्तु

चाह कर भी वह ऐसा नहीं कर पाता है । फलस्वरूप उसके अन्दर दिखावटीपन प्रवेश करता जाता है और वह उद्विग्न रहता है । इस एकांकी में नए और पुराने का ऐसा ही द्वन्द्व चित्रित है ।

`बहुत बड़ा सवाल` में घर-परिवार, व्यक्ति और समाज, व्यवस्था और राजनीति के परस्पर द्वन्द्व को व्यंग्यात्मक लहजे में चित्रित किया गया है । `शायद` और `हं:` में चित्रित द्वन्द्व मूलत: मानसिक द्वन्द्व है जो पात्रों के संवादों के माध्यम से कुशलतापूर्वक उभारा गया है । इन में दाम्पत्य जीवन में आने वाली विसंगतियों, घुटन, सम्बन्धों के विघटन और अपरोक्ष स्थितियों से उभरने वाला द्वन्द्व ही चित्रित है ।`छतरियां` में जो द्वन्द्व चित्रित है, वह व्यक्ति द्वारा सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवेश की विसंगति के विरोध के कारण है । इस प्रकार इस पार्श्व नाटक में चित्रित द्वन्द्व का क्षेत्र व्यापक है ।

`अण्डे के छिलके` संग्रह की रचनाएं नाटकीय विधान और भाषिक संरचना की दृष्टि से वैविध्य लिए हुए हैं । जहां तक नाटकीय विधान का सवाल है, आरम्भ के तीन एकांकियों - `अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां`,`प्यालियां टूटती हैं` - में कोई गहरा नाटकीय विधान नहीं है। इनमें रंगमंचीयता तो है परन्तु गहरे रंगानुभव और सर्जनात्मकता का अभाव ही दिखाई पड़ता है । ये तीनों एकांकी हल्के-फुल्केवातावरण की ही निर्मिति करते हैं ।`अण्डे के छिलके` और `प्यालियां टूटती हैं` के पात्र मध्यवर्ग के जीते जागते उदाहरण हैं । इनके संवाद भी प्राय: लम्बे हैं, जिनमें अनुभव की अपरिपक्वता स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं । इन तीनों की तुलामें `बहुत बड़ा सवाल` अपने नाटकीय विधान और रंगानुभव में बहुतपरिपक्व है । प्रत्येक पात्र का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है । संवाद संक्षिप्त और सारगर्भित हैं । इससे एकांकीकार के अनुभव की परिपक्वता का संकेत मिलता है । रंगमंच की दृष्टि से भी यह एकांकी बहुत सफल रहा है । `शायद` और `हं:` बीजनाटक भी अपने नाटकीय

विधान में परिपक्व है । नाटककार द्वारा निर्देशित रंग संकेत इन बीज नाटकों में बहुत महत्वपूर्ण हैं ।संवाद ही इन नाटकों के प्राण हैं । संक्षिप्त और अधूरे संवाद पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व और उनकी अधूरी जिंदगी को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं । `छतरियां ` तो अपने नाटकीय विधान में अभिनव प्रयोग ही हैं । पर्दे केपीछे से आने वाली ध्वनियां, संकेत, संवाद और रंग निर्देश ही इस पार्श्व नाटक की जीवन्तता का मूल कारण हैं । पार्श्व नाटक होते हुए भीरंगमंच की सक्रिय और सार्थक जीवन्तता का इतना ध्यान रखना मोहन राकेश की सूक्ष्म रंग चेतना का प्रमाण है ।

नाट्य भाषा मोहनराकेश का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है । वे जीवन भर नाटकों के लिए नए शब्द और नई भाषा की खोज में लगे रहे । उनके नाटकों में भाषा के विविध स्तर दिखाई देते हैं ।जहां तक `अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक की भाषा का सवाल है, इसमें भी विविध स्तर देखने को मिलते हैं । आरम्भ के तीन एकांकियों में अनुभव की वह परिपक्वता नहीं है जो `बहुत बड़ा सवाल` में दिखाई पड़ती है । `शायद` और `हं:` इससे भी आगे की मंजिल है और `छतरियां ` तो भाषा को भी मूक कर देता है ।यह है मोहन राकेश की भाषा-यात्रा जिस पर वे आजीवन एक अन्वेषक की भांति चलते रहे ।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश का व्यक्तित्व एक खास तरह की जटिलता लिए हुए है । उनके रचना-संसार में उनका जीवन और युग सत्य घुल-मिलकर व्यक्त हुए हैं । उन्होंने साहित्य की प्राय: सभी प्रमुख विधाओं में लिखा, लेकिन विशेष प्रसिद्धि उन्हें नाटक के क्षेत्र में ही मिली । समीक्षकों नेउन्हें नाटक का मसीहा ठीक ही कहा है । 3 दिसम्बर 1972 को अचानक उनका देहान्त न हो गया होता तो संभवत: वे हिन्दी साहित्य को अपने लेखन से और अधिक समृद्ध किए होते ।

ग्रन्थानुक्रमणिका

1.	अनीता राकेश	चन्द सतरें और राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण - 1993
2.	(सं0)अनीता राकेश	मोहन राकेश : डायरी राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली संस्करण - 1985
3.	डा0 अंजुलता गौड़	हिन्दी एकांकी में जीवन-मूल्य शलभ प्रकाशन, मेरठ, संस्करण - 1994
4.	इन्द्रनाथ मदान	हिन्दी नाटक और रंगमंच, पहचान और परख लिपि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 1975
5.	डा0 उर्मिला मिश्र	आधुनिकता और मोहन राकेश विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी
6.	ओम प्रकाश सारस्वत	बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक मथन प्रकाशन,रोहतक संस्करण - 1984
7.	कमलेश्वर	मेरा हमदम मेरा दोस्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली संस्करण - 1975
8.	कमलेश्वर	गर्दिश के दिन राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली संस्करण - 1980
9.	डा0 कुंवरचन्द प्रकाश सिंह	हिन्दी नाटक साहित्य और रंगमंच की भूमिका भारती ग्रन्थ भण्डार, दिल्ली संस्करण - 1974

10.	सम्पादक - संकलन कौशल्या अश्क	अश्क - साक्षात्कार और विचार नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण - 1992
11.	गिरीश रस्तोगी	समकालीन हिन्दी नाटककार इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली संस्करण - 1982
12.	गोविन्द चातक	आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 1975
13.	जगदीश शर्मा	मोहन राकेश की रंग सृष्टि राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
14.	जयदेव तनेजा	नयी रंग-चेतना और हिन्दी नाटककार तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 1994
15.	जयदेव तनेजा	हिन्दी नाटक पुनःमूल्यांकन ग्रन्थम प्रकाशन, रामबाग, कानपुर संस्करण - 1971
16.	जीवन प्रकाश जोशी	नाटककार मोहन राकेश : एक सर्वेक्षण समीक्षा सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 1975
17.	तिलकराज शर्मा	अपने नाटकों के दायरे में : मोहन राकेश आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली संस्करण - 1976

18. डा० दशरथ ओझा — हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास
राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली

19. डा० दशरथ ओझा — आजकल हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
संस्करण - 1984

20. द्विजराम यादव — मोहन राकेश के नाटक
साहित्य लोक, कानपुर,
संस्करण - 1980

21. डा० नगेन्द्र — आधुनिक हिन्दी नाटक
नेशनल पब्लिकेशन्स हाऊस, दिल्ली,
संस्करण - 1970

22. नरनारायण राय — रंगशिल्पी मोहन राकेश
कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली,
संस्करण - 1991

23. नरनारायण राय — आधुनिक हिन्दी नाट्यालोचन
नयी भूमिका
वाणी प्रकाशन, दिल्ली,
संस्करण - 1979

24. नरनारायण लाल — हिन्दी नाटक : संदर्भ और प्रकृति
के. एल. पचौरी प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण - 1987

25. नरेन्द्र नाथ त्रिपाठी — साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
सारस्वत प्रकाशन, नई दिल्ली,
संस्करण - 1985

26. नेमिचन्द जैन — आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच
दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण 1978

27.	पुष्पा बंसल	मोहन राकेश का नाट्य साहित्य सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 1976
28.	प्रतिभा अग्रवाल	मोहन राकेश साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण - 1992
29.	डा० प्रेमलता	आधुनिक हिन्दी नाटक और भाषा की सृजनशीलता लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण - 1993
30.	सं० डा० भारतभूषण अग्रवाल	एकांकी नवरत्न रंजन प्रकाशन, आगरा संस्करण - 1973
31.	भुवनेश्वर महतो	हिन्दी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण - 1980
32.	मंजुला अवतार	मोहन राकेश के नाटकों में अजनबीपन की अवधारणा भारतीय भाषा केन्द्र, नई दिल्ली संस्करण - 1987
33.	महेश कुमार	मोहन राकेश के नाटकों में पारिवारिक जीवन की समस्याएं भारतीय भाषा केन्द्र, नई दिल्ली संस्करण - 1987
34.	मीना पिंपलाधुरे	मोहन राकेश का नारी संसार प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली संस्करण - 1987

35. सम्पादक डा० यश गुलाटी — वृहद् साहित्यिक निबन्ध
सूर्य भारती प्रकाशन, नई दिल्ली,
संस्करण - 1994

36. डा० रमेश तिवारी — हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विश्लेषण
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण - 1973

37. संपा० राकेश गुप्त
स्वं केशवदत्त ध्वाली — एकायन
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
संस्करण - 1984

38. रामचन्द महेन्द्र — हिन्दी एकांकी : तत्व, विकास और प्रमुख एकांकीकार
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, आगरा

39. डा० रामचरण महेन्द्र — हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

40. रामचरण महेन्द्र — हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
संस्करण - 1955

41. रीता कुमार — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में
विभूप्रकाशन, साहिबाबाद,
संस्करण - 1980

42. डा० लक्ष्मी नारायण लाल — आधुनिक हिन्दी रंगमंच
साहित्य भवन, इलाहाबाद

43. वीणा गौतम — आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना
संजय प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण - 1984

44.	डा० सुरेश चन्द चुलकीमठ	मोहन राकेश : साहित्य सम्यु मूल्यांकन आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली
45.	सिद्धनाथ कुमार	हिन्दी एकांकी कीशिल्प विधि का विकास इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 1984
46.	सिद्धलिंग पट्टणशेट्टी	मोहन राकेश और उनके नाटक : एक आधुनातन विश्लेषण अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण - 1996
47.	संपा० सुन्दरलाल कथूरिया	नाटककार मोहन राकेश कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली
48.	डा० सुषमा अग्रवाल	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण - 1986
49.	प्रो० त्रिभुवन सिंह	आधुनिक साहित्यिक निबन्ध रचना पब्लिकेशन, वाराणसी, संस्करण- 1988